# दृश्य-दृष्टि-दर्शन

अराजकृत कुछ पुस्तकों पर चिन्तन
चौदह विद्वानों के सारगर्भित लेख

संकलन

डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज'
पी-एच०डी०

# दृश्य - दृष्टि - दर्शन

(अराजकृत कुछ पुस्तकों पर चिन्तन)

संकलनकर्त्ता

डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज'

एम०ए०, पी-एच०डी०, आयुर्वेद-रत्न, अरा-रत्न,

बी०एड्०, सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य

★

संस्करण-१, सन् १९९८ ई०,

(पाण्डुलिपि संस्करण, सीमित संख्या में,

केवल अधिकारी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध)

★

सम्पर्क :

एकता प्रकाशन

बी-२-बी-३४, जनकपुरी, नई दिल्ली-११००५८

# पूर्व कथन

☐ सन् १९९७ में *'श्री रामादर्श (काव्य)'* का संस्करण-६ *'श्री राम ज* *(अर्थ सहित)'* का प्रथम पाण्डुलिपि संस्करण, के हस्तलिखित पां०लि० संस्करण-७ तथा *'श्री राम भक्ति सुधा'* के हस्तलिखित पां०लि० संस्करण-६ का प्रकाशन हुआ।

☐ सन् १९९८ तो चल रहा है। उसके लिए १- *'सरल गीता'* (संस्करण-३), *'धार्मिक चिन्तन'* (संस्करण-२) तथा ३-'ईशावास्योपनिषद् का अध्ययन' (संस्करण-४) प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ और ग्रन्थ प्रकाशित होने की आशा है।

☐ उक्त सातों ग्रन्थ पाण्डुलिपि संस्करण ही हैं । वे सब सीमित संख्या में हैं। उद्देश्य है कि केवल अधिकारी पाठक उसे लें, पढ़ें, मूल्यांकन करें। कुछ प्रतियाँ उन पाठकों के लिए हैं जो साहित्य को चाव से पढ़ते हैं। ये पुस्तकें व्यवसाय के लिए नहीं छापी जा रहीं। ये पुस्तकें प्रायः भेंट स्वरूप जा रही हैं।

☐ *'दृश्य-दृष्टि-दर्शन'* नई प्रकार का प्रयोग होगा । १९९७-९८ की पुस्तकों में से (१) श्री रामादर्श (काव्य), (२) अराज दोहावली तथा (३) धार्मिक चिन्तन— ये तीन पुस्तकें चुनी गयीं। विविध विद्वानों से निवेदन किया गया कि वे एक-एक पुस्तक के आधार पर लेख भेजने की कृपा करें। मेरा उनसे वचन था कि मैं और तो कुछ देने की स्थिति में नहीं हूँ किन्तु आपके लेख को प्रकाशित रूप में आप को भेंट करूँगा और वह पुस्तक समीक्षित पुस्तक के समान ही बनेगी।

☐ इस पुस्तक के रूप में 'दृश्य-दृष्टि-दर्शन' उन सुधी लेखकों को उन्हीं की रचनाएँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। वे जिस क्रम से प्राप्त हुईं उसी क्रम से जुड़ती गई हैं। इसी क्रम से प्रकाशित हैं। इस बीच 'श्री राम जप' पर प्राप्त एक लेख भी पुस्तक में दिया गया है।

अराज

# समर्पण

उन

सभी सुधी विद्वानों को

जो मुझसे पूर्व लिखते रहे

जो आज लिख रहे हैं

और

जो मेरे बाद लिखेंगे।

अराज

# लेख-सूची

१. रामादर्श सार्थक काव्य — डॉ० रमाकान्त शुक्ल ५
२. प्रवहमान लेखनी का नाम — अराज — डॉ० देवराज 'पथिक' १०
३. अराज दोहावली — डॉ० कैलाश चन्द्र भाटिया २३
४. श्री रामादर्श : एक दृष्टि — डॉ० कृष्ण गोपाल मिश्र ३१
५. श्री रामादर्श (काव्य) की प्रतिबिम्बित भाव-छवि — डॉ० शिवशंकर शर्मा 'राकेश' ४३
६. अन बूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग — डॉ० प्रसाद 'निष्काम' ४७
७. दोहों की सत्सई — डॉ० सुधेश ६२
८. तत्वान्वेषणे तत्परः डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया — डॉ० लीलाधर वियोगी ६८
९. आत्मोत्थान की दिशा का प्रस्थान-बिन्दु — डॉ० सुन्दरलाल कथूरिया ७६
१०. धार्मिक चिन्तन : एक दृष्टि — डॉ० रजनीकान्त लहरी ८६
११. एक आदर्श मानव (!) संहिता — डॉ० बलदेव वंशी ९१
१२. समाज धर्म के लिए और धर्म समाज के लिए — डॉ० ओम्प्रकाश शर्मा 'प्रकाश' ९६
१३. 'अराज' का धर्म-दर्शन — डॉ० मदन लाल कपूर १००
१४. अराजकृत 'श्री राम जप' — प्रो० सोमदत्त दीक्षित १०३

# १. रामादर्श : सार्थक काव्य

- डॉ० रमाकान्त शुक्ल

❑ जब तक भूतल मेँ पर्वत नदियोँ का अस्तित्व है तब तक राम-कथा सन्सार मेँ प्रचलित होती रहेगी।' — इस कथन के द्वारा आदि कवि वाल्मीकि ने राम कथा की दिक्कालजयी सञ्जीवनी शक्ति का संकेत किया था। बौद्ध, जैन तथा वैदिक धर्मानुयाइयोँ ने अपने धर्म के महनीय सिद्धान्तोँ के प्रचार के लिए राम-कथा के नायक श्री राम के चरित्र का अपने-अपने दृष्टिकोण से चित्रण किया। रस-सिद्ध कवियोँ ने तथा नाटककारोँ ने मानवीय संवेदनाओँ की अभिव्यक्ति के लिए राम-कथा का अवलम्ब लिया और भक्तोँ ने भक्ति निवेदन के लिए भी राम जैसे महान आलम्बन का आश्रय लिया, फलस्वरूप पूर्ण परात्पर ब्रह्म, तपस्वी राम, शरणागत-वत्सल राम, राजा राम, लोक-रक्षक राम, पतित पावन राम, दीनोद्धारक राम, धर्मरक्षक राम, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, चित्तवृत्ति के विश्राम-स्थल राम तथा अनिर्वचनीय निर्गुण राम, ऐसे कितने ही राम के रूप कवियोँ को अनुभूत हुए जिनका वर्णन उन्होँने करके अपने समकालीन तथा आगामी पाठकोँ का चित्त आविजित करना चाहा है। बीसवीँ शताब्दी के अनेक भारतीय कवियोँ ने हिन्दी और संस्कृत के माध्यम से राम-चरित्र प्रस्तुत करते हुए उनके समाज सुधारक एवं राष्ट्रोद्धारक रूप पर विशेष दृष्टि रखी। मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य रमेशचन्द्र शुक्ल, डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, आदि कवियोँ ने राम के राष्ट्रसेवी व्यक्तित्व को युगानुरूप अभिव्यक्ति देने का प्रयास 'साकेत', 'सुगम रामायण' तथा'एक विश्वास और' आदि रचनाओँ के माध्यम से किया है।

❑ डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' का 'रामादर्श' नामक काव्य राम के बहु आयामी व्यक्तित्व का अपनी सरल सरस मसृण शैली मेँ अंकन करने वाला हिन्दी साहित्य का इन पंक्तियोँ के लिखे जाने तक नवीनतम प्रयास है। पूर्व कवियोँ द्वारा चित्रित राम के चरित्र की समस्त विशेषताओँ के प्रति आस्थावान होते हुए भी कवि अराज ने राम के राष्ट्रसेवी और लोक-रक्षक रूप का विशेष मनोयोग से चित्रण किया है। उनके राम आज की पीढ़ी को सार्थक दिशा देने वाले हैँ। उदात्त सामाजिक गुणोँ के संघात राम के विषय मेँ कवि ने कहा है—

### राम छन्द

*राम दम्भ के परम शत्रु हैं, आरति सबकी सदा जानते।*
*भला भलों का करने को वे, दीन दुःख हरने को आते।।*

*तभी अयोध्या में दशरथ के, घर में नया उजाला प्रगटा।*
*गुरु वशिष्ठ ने मस्तक देखा, रक्खा नाम राम उस शिशु का।*

*गुरु ने भावी समझ सुनाई, यही बनेगा जग का त्राता।*
*कर्मों को मर्यादा देगा, औरों के दुख स्वयम् सहेगा।।*

*यह हर मन में रमा रहेगा, युगों युगों तक पुजा करेगा।*
*दया प्रेम का सोता है यह, भव सागर में नौका है यह।।*

### दोहा छन्द

*पावन इसके कर्म शुभ, सबके हित आदर्श*
*स्वर्ण करेंगे लौहको, इस पारस के स्पर्श।।६।।*

### राम छन्द

*राम बुद्धि का दीप्ति बिन्दु है, राम हृदय विश्राम भूमि है।*
*राम स्वयम् साकार धर्म है, राम स्वयम् आदर्श कर्म है।।*

❑ रामादर्श की कथा को उल्लासदात्री, काम, क्रोध, मद, मोह की नाशकर्त्री, संसार रूपी जंगल में भ्रांत पथिकों को मार्गदर्शन कराने वाली तथा लोगों में कर्म, भक्ति और विज्ञान को जगाने वाली प्रतिष्ठापित करने वाले। डॉ० अराज ने इसका कथानक पाँच खण्डों में विभक्त किया है। इनमें खण्डों को आपने 'छवि' कहा है। बाल राम, युवा राम, तपस्वी राम, प्रेमी राम तथा वीर राम नामक इन खण्डों में राम-कथा का चित्रण किया गया है। कवि को इस काव्य के लिखने की प्रेरणा सहज भक्तिभाव के कारण हुई। उसके मन में 'हर हर बम बम बम बम हर हर' इस सोलह मात्रा वाली लय का उदय हुआ और इसी धुन पर उसने इस काव्य को रचना प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शंकर राम के आराध्य हैं और सभी विधाओं के आद्य-उपदेष्टा माने गए हैं। उनके डमरू के नाद से जिस तरह से पाणिनि को व्याकरण के चतुर्दश सूत्रों का लाभ हुआ था, उसी प्रकार उनके बम बम की ध्वनि में राम-कथा

की अभिनव शैली और कथ्य की प्रेरणा भावसमाधि में लीन डॉ० अराज को हुई । छन्द शास्त्र की दृष्टि से इस मात्रिक छन्द का नाम चाहे कुछ भी रहा हो पर डॉ० अराज ने इसे 'राम छन्द' कहा है । राम छन्द की आठ पंक्तियों के बाद हिन्दी का प्रसिद्ध छन्द दोहा दिया गया है। हर छवि के अन्त में दो दोहे एक साथ रखे गये हैं और कहीं-कहीं राम छन्द के स्थान पर अन्य छन्छ भी आये हैं। जैसे —

*राम-गंगा पावनी यह इस धरा पर ला बहाई।*
*आदि कवि से आधुनिक तक जिन अनेकों साधुओं ने।।*

*उन सभी का दास ओम अराज करता नमन उनको।*
*क्योंकि उनकी लीक पर ही लड़खड़ाता चल रहा हूँ।।*

*— रामादर्श, बालराम, ६,७*

❑ आज के युग में जबकि हिन्दी के अनेक रचनाकार अपनी रचनाओं में दुर्बोधता को साभिनिवेश और सायास सन्निविष्ट करने में अपने कवि-कर्म की सफलता मानते हैं, डॉ० अराज ने अपनी रचना को सहज-सुबोध रूप देकर अपने विशिष्ट काव्य मार्ग का परिचय दिया है। सम्पूर्ण रचना को न तो पढ़ने में कहीं क्लिष्टता का अनुभव होता है और न ही सुनने में दुर्बोधता का अनुभव होता है। इस सुबोधता की रक्षा करने के लिए ही सम्भवः डॉ० अराज ने अन्त्यानुप्रास के पालन का आग्रह भी शिथिल कर दिया है। छोटे-छोटे वाक्यों में गहन गम्भीर भावों का समावेश कवि की भाषा की समास शक्ति एवं कल्पना की समाहार शक्ति का द्योतक है। उदाहरण के लिए एक अंश प्रस्तुत है—

*शबरी सच्चा प्रेम भक्ति है, बिना प्रेम के सब आडम्बर।*
*सज्जन पुरुषों या सद्ग्रन्थों, सुनी पढ़ी हरि की गाथाएँ।।*

*मनन करें हरि के गुण गाएँ, मन इन्द्रियाँ सम्भालें अपनी।*
*भले कर्म कर यज्ञ भाव से, प्रभु का दिया तुष्ट हो भोगें।।*

*कण कण में प्रभु के दर्शन हों, सबसे मिलें विमल मन होकर।*
*तब मन का मन्दिर बनता है, भवन ईश की लीलाओं का।।*

❑ रचना की सुबोधता की सफलता इसमेँ है कि गूढ़-से गूढ़ तत्त्वोँ का विवेच भी सहज-सुगम प्रतीत होता है। चाहे ज्ञान का विवेचन हो, भक्ति का विवेच हो या कर्म का विवेचन हो अथवा अन्यान्य दार्शनिक विचारोँ का उपस्थाप हो, सब कुछ ऐसा लगता है जैसे कि हम सुनते ही इसे हृदयंगम कर सक हैँ और यदि उस पर गहराई से विचार करेँ तो हमारी यात्रा काफी दूरगा हो जाती है । लौकिक विद्याएँ और अध्यात्म विद्या मिलकर मानव का हि कर सकती हैँ विवेकानन्द ने इस विचार को विश्व के सम्मुख उन्नीसवीँ त बीसवीँ शताब्दी मेँ रखा और उस के बाद भी अनेक विचारकोँ ने इस विच के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की । डॉ० अराज ने भी अध्यात्म विद्या अं भौतिक-विज्ञानोँ के समन्वय को मानव कल्याण के लिए उपयोगी माना यह चिन्तन राम छन्द मेँ किस सुगमता के साथ प्रस्तुत हुआ है, सहृ सुधी जन देखेँ—

*लौकिक और आत्मा की विद्या, मानव हित मेँ पूरक सी हैँ।*
*आतम साध्य मगर नीरोगी, काया उसका साधन मन्दिर ।।*

*श्रम से बुद्धिजनित कौशल से, हितकर अर्जन सीखेँ पहले।*
*जीवित रह कर कर्म भक्ति से, ज्ञान अलौकिक प्राप्त करेँ तब।।*

❑ सूक्ति-विधान या सुभाषित-योजना इस काव्य का अपर वैशिष्ट्य है । के आदर्श चरित्र के वर्णन के प्रसंग मेँ ऐसी अनेक सूक्तियाँ कवि की लेख से प्रसूत हो गयी हैँ जो उसके व्यापक अनुभव और चिन्तन का परिचय दे हैँ। उदाहरणार्थ —

(१) *'किन्तु शस्त्र धर किसी दीन को कभी सताना महा पाप है।'*

(२) *'विद्या बिना सन्सार मेँ सब ओर ज्योँ अँधकार है।'*
*विद्या बिना पशु सा मनुज पाता सदा दुतकार है।।'*

(३) *'क्षमा धर्म है किन्तु तभी जब पहले दण्डयोग्य शक्ति हो।'*

(४) *'चेतन से जड़ तक हुआ राम दया विस्तार।*
*कृपा सिन्धु के प्यार का नहीँ आर या पार।।*

(५) *'पूज्य न केवल कुल से कोई, पूज्य न केवल रूप धरे से।*
*पूज्य न केवल वयश्शास्त्र से सद्गुण केवल पूजे जाते।।'*

(६) *'बिन विवेक के शक्ति नरक है।'*

(७) *'ब्राह्य तेज बिन छात्र तेज के, पशुओं का चारा भर होगा।'*

(८) *' यह सन्सार चक्र पहिये सा, रात-दिवस चलता रहता है।*
*एक अरा उठता है ऊपर, एक अरा नीचे गिरता है।।'*

❑ कवि की रचना का सन्देश एक लोक-कल्याणकारी शासन-व्यवस्था की स्थापना है जिसमें दुःख और ताप का अस्तित्त्व न हो। पृथ्वी शस्यशालिनी हो, लोगों के ह्रदय स्नेह से परिपूर्ण हों। छल-फरेब का बोल-बाला न हो। प्रजा-जनों को समुचित न्याय सुलभ हो, सभी लोगों को रोज़गार सुलभ हो एवं कर-चोरी की प्रवृत्ति न हो, ऐसे आदर्श परिवेश की कल्पना करता हुआ रामादर्श का कवि कहता है —

*राम राज में दुःख ताप का, दर्शन नहीं कथन सम्भव था।*
*धरा धान से ह्रदय नेह से, बुद्धि सत्य से सदा भरी थी।।*

*राजा रक्षा न्याय बाँटते, सारी प्रजा सहर्ष कर्मरत।*
*राजा को कर सभी चुकाते, जन मन आशिर्वाद भेजता।।*

❑ रामादर्श के कई सामूहिक पाठ भी हुए हैं, गाकर, बोलकर या सव्याख्या। इस अनन्त हरि-कथा की परम्परा में राम के पावन चरित्र को युगीन आवश्यकता के अनुरूप प्रस्तुत कर डॉ० अराज ने अपनी जिस सारस्वत साधना का परिचय दिया है, उसके लिए वे अभिनन्दन के पात्र हैं। आशा है सह्रदय सुधीजन इसका रसास्वादन करेंगे और समीक्षकगण अपने चिन्तन से इसको परखेंगे।

सम्पर्क :
आर-८, वाण विहार,
नयी दिल्ली-११००५६

# २. प्रवहमान लेखनी का नाम - अराज

- डॉ० देवराज

❑ जीवन की अनेक विषम पगडण्डियों को लाँघता-फाँदता एक युवा महानगर की त्रासदी झेलते-झेलते कब? कैसे? 'अराज' के रूप में सा कर गया-केवल परिजन और निकट-मित्र ही इस जीवट-व्यक्तित्व के समय हैं। 'अचल राजपूत' से 'अराज' तक के अन्तराल में चार दशकों सृजन कैसे प्रौढ़ से प्रौढ़तर होता चला गया, रचनाधर्मी प्रतिबद्धता उसका प्रमाण है। गम्भीर चिन्तक और विचारक 'अराज' जीवन के विविध प उद्घाटन में जहाँ पटुता लिये है वहाँ बहुवर्णी एवम् बहुकोणीय सन्द से सञ्युक्त लेखन का धनी अपने समय का अपूर्व वट-वृक्ष है। एक सहज और सौम्य व्यक्तित्व का नाम डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' है, व समकालीन साहित्यकारों की ऐसी सोच यदि बनी है तो इसके पीछे मौन साधक 'अराज' की अविरल साहित्य -साधना का विशिष्ठ योगदा जिसमे सत्य, शिव और सुन्दर का अद्भुत समावेश है । भारतीय मू की प्रतिध्वनि अराज के सम्पूर्ण साहित्य की निधि है । प्राचीन धर्म-ग्र का चिन्तन अराज की साहित्य-यात्रा में सर्वत्र साथ रहा है । जन-कल परोपकार, दया, अहिन्सा, क्षमा, विनम्रता, स्नेह-सद्भाव जैसे शा मानव-मूल्यो की अनुगूँज अराज-साहित्य की महान धरोहर है ।

❑ विविध विधाओं में पाण्डित्यपूर्ण रचना - शिल्पी अराज की उसकी हर कृतिमें एक समान परिलक्षित होती है। सभी कृतियाँ उच्च मा मूल्यों, आदर्शों और भारतीय सन्स्कृति के मूल में निहित मान सम्वेदनाओं से समृद्ध हैं । अराज के परवर्ती साहित्य में सन सूफियों समाज सुधारकों, मुनियों और मनीषियों की तपोभूमि की सात्विव पवित्रता और महिमामण्डित चिन्तन का स्वर अधिक ऊँचे उद्घोष के मुखरित हुआ है। भावना के स्तर पर अराज की हर कृति माटी की महव लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए प्रतिबद्ध है । स्नेह और सै के वातावरण-निर्माण में अराज के लेखन की महत्त्वपूर्ण भूमिका

❑ अराज का व्यक्तित्व जहाँ बहुमुखी है, लेखन भी इन्द्रधनुषी छटा से बहु है। एक अच्छे मित्र, एक अच्छे सहयोगी, एक अच्छे प्रशासक और एक

मनुष्य के समग्र का नाम जहाँ अराज कहा जा सकता है वहाँ श्रेष्ठ भाषाविद, लिपि-वैज्ञानिक, सहृदय कवि, उपन्यासकार, गजलकार, गीताकार और समीक्षक के रूप में स्थापित नाम अराज ही तो है । अपने पारिवारिक दायित्वों से मुक्त अराज आज भी सृजन के क्षेत्र में अपनी लगन और धुन का पक्का है। मेरे परिचित परिसर में बहुत विरले ही इस दृष्टि से अराज की समकक्षता पर खरे उतर सकते हैं । एक भाषा-शिल्पी के रूप मे समादृत डॉ० अराज का हस्तलेख नयनाभिराम है । समय-समय पर अपनी कृतियों की हस्तलिखित पाण्डुलिपियों की प्रतियां मित्रों को वितरित करने में इस लेखक को जो आनन्दानुभूति होती है उसका मैं भी एक साक्षी हूँ। दुर्भाग्यवश अराज द्वारा भेंट स्वरूप दी गई ऐसी कृतियाँ आज मेरे पास उपलब्ध नहीं हैं। मेरे व्यक्तिगत पुस्तकालय की जो क्षति दीमक द्वारा की गई थी जिसमें अनेक सन्दर्भ ग्रन्थ, मेरी स्वयं की दर्लभ कृतियाँ तथा समकालीन विद्वान साहित्यकारों द्वारा समय-समय पर भेंट की गई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें नष्ट हुई हैं यह मेरे लिए आज भी दुःखद प्रसङ्ग है। अराज की कृतियाँ भी इस दुर्घटना की शिकार हुई हैं। यहाँ मेरा कथनाभिप्राय मात्र यह है यदि अराज सृजन के क्षेत्र में आज भी पूरे मनोयोग के साथ सक्रिय हैं। इस दृष्टि से सर्जक अराज की सतत साहित्य साधना अनुकरणीय है।

❑ वस्तुतः अराज भीड़-भाड़ वाले इस महानगर में भी अकेला है क्योंकि वह किसी भी गुटबाज़ी से अपने आपको बचाकर चलने की कला जानता है । वह विवादों की अपेक्षा समन्वय का सदैव पक्षधर रहा है । यही कारण है कि डॉ० अराज साहित्य- धर्मियों में अपनी एक अलग पहचान सुरक्षित रखकर चलने वाला साहित्यकार है। देखने में ठीक-ठाक, वाणी से मधुर और हृदय से भावुक-सम्वेदनशील अराज जब कभी मञ्च से बोलता है उसका शब्द-शब्द गहरी सोच से रसा-पका होने के कारण सहृदयजन की हृदयतन्त्री को सोचने-समझने को झकझोरता है। वस्तुतः अराज की साहित्य-साधना का फलक बड़ा विस्तृत और विशाल है। यों तो अपने बाल्यकाल से ही इस रचनाकार ने तुकबन्दी आरम्भ कर दी थी किन्तु छठे दशक से डॉ० अराज का लेखन अविरल रूप से प्रवहमान है यह इस सरस्वती-पुत्र की सारस्वत-यात्रा का अत्यन्त प्रभावशाली पक्ष है।

❑ अराज एक व्यक्ति के साथ-साथ एक सन्स्था भी है। इस रचनाकार सम्वेदनाएँ इतनी गहरी हैँ कि इससे जुड़ने वाला हर व्यक्ति अपने ज्ञान-को को समृद्ध बनाकर गौरवान्वित अनुभव करता है। लगभग ढाई दशक से अराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से मैँ प्रभावित हूँ। प्रथम परिचय से ही लगा अराज के भीतर का साहित्यकार सदाबहार रहने वाला है और मैँ देख रहा हूँ कि माँ शारदा का यह वरद पुत्र अपनी सृजनात्मक प्रति और गम्भीर सोच की ऊर्जा से समसामयिक परिवेश को निरन्तर सजाने-सँवा मेँ सक्रिय है। यह सौभाग्य विरलोँ को ही हस्तगत होता है।

❑ डॉ० अराज परम उद्योगशील हैँ। जिस क्षेत्र की ओर ये देखते हैँ उस समूचे क्षितिज के आर-पार झाँक लेते हैँ । यही कारण है कि शिक्षा साधना मेँ डॉ० अराज ने प्रथम श्रेणी मेँ एम०ए० (हिन्दी) विश्व विद्याल मेँ द्वितीय स्थान प्राप्त कर अपनी अध्ययनशील प्रकृति को उजागर किया इतना ही नहीँ 'नागरी लिपि का उद्भव और विकास' जैसे गम्भीर वि पर इन की शोधकृति पर इन्हेँ पी-एच०डी० की उपाधि से अलङ्कृत भी कि गया। बहुमुखी शिक्षार्जन के धनी डॉ० अराज ने बी०एड०, वैद्य विशार अरारत्न, आयुर्वेदरत्न आदि उपधियोँ को प्राप्त कर ज्ञान-प्रवाह को पा गंगा के अभिधान की सार्थकता प्रदान की। इस विशद और विपुल ज्ञाना ने अराज की सोच को निश्चय ही धारदार बनाया है। डॉ० अराज के नैसर्गि चिन्तन और सम्वेदनशील प्रकृति के सम्मुख इस साहित्यकार द्वारा अजि ज्ञानोपाधियाँ भले ही बौनी होँ परन्तु साधना के पथ को आलोकमय बन मेँ अध्ययन की गहराई ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, यह मानना पड़ेगा। आज डॉ० अराज जो कुछ भी है, वह जो कुछ भी लिख रहा है उस भीतर ज्ञान-गङ्गा का अमृत अवश्य ही छलकता दिखाई देता है।

❑ मूलतः डॉ० अराज एक सम्वेदनशील कवि हैँ । उन के समग्र लेखन कवि-मन की सहृदयता सर्वत्र प्रतिबिम्बित है । डॉ० अराज ने लेखन को मौलिक आयाम दिये हैँ जिन्हेँ आनेवाला कल शोध की वस्तु मानेगा। साहित्यकार की लेखन-प्रतिभा बहुआयामी है। क्या कविता? क्या गद्य? उपन्यास? जो भी अराज ने लिखा है डूब कर लिखा है यही अराज की मौलि

पहचान है। कविता के अन्तर्गत मुक्तक काव्य, गीतिकाव्य, गद्य काव्य, नवगीत, खण्डकाव्य, महाकाव्य, लम्बी कविता अभिव्यक्ति के हर छोर को पूरे मनोयोग के साथ छूआ है । डॉ० अराज का प्रामाणिक लेखन सन् १६६३ से यदि स्वीकार करें तो 'हँसते-रोते आँसू' इन की कविताओँ तथा गद्य पद्य रचनारूप का प्रथम पुष्प सन् १६६३ मेँ प्रकाशित हुआ । वस्तुतः कवि अराज की काव्य यात्रा का यहीँ से प्रामाणिक शुभारम्भ कहा जा सकता है। सन् १६६८ मेँ 'क्षितिज की खोज' कृति प्रकाशित हुई जिसमेँ कविताएँ, गद्य, नवगीत का त्रिकोणीय आस्वाद समाहित है। 'अनामयुग' १६७४ की प्रकाशित कृति है। जिसमेँ कविताएँ समय की वाणी कही जा सकती हैँ। १६८१ मेँ प्रकाशित 'सत्यज' कवि का प्रथम खण्डकाव्य है जिस मेँ गद्य-पद्य की प्रकाश-किरणेँ विकीर्ण हो रही हैँ। यह एक सशक्त काव्य-कृति है। १६८४ मेँ 'रामादर्श खण्डकाव्य' पद्य की सजीव प्रकाशित रचना है जिसका कथा और शिल्प कवि अराज की सृजनात्मक प्रौढ़ि को प्रतिबिम्बित करता है। सन् १६८६ मेँ प्रकाशित 'दो-बटे- तीन इन्सान' समय की त्रासदी को रेखाङ्कित करने वाली शाश्वत काव्य कृति है । १६८७ मेँ प्रकाशित 'एन् अबिप्रायम्' काव्य कृति मेँ अन्य कविताओँ के अतिरिक्त कवि की पूर्व प्रकाशित काव्यकृतियोँ 'धर्मा', 'सत्यापन' तथा ' सीँग पर उगी हुई लाश' को सम्मिलित किया गया है। ये लम्बी कविता परम्परा की श्रेष्ठ कृतियाँ कही जा सकती हैँ । सन् १६६३ का वर्ष डॉ० अराज की रचनाधर्मिता के लिए अनन्त भक्ति-सागर के अति उन्नत गवाक्ष उद्‌घाटित करता है । इस वर्ष कवि की छोटी-बड़ी ग्यारह भक्ति-विषयक विशेषकर राम-भक्ति से सम्बिन्धित पुस्तकेँ प्रकाशित हुई हैँ। इन पुस्तकोँ के अवगाहन से लगता है कि यौवन-मदिरा का आस्वाद लेने वाला कवि आज भक्ति-भावना के पावन प्रवाह मेँ डुबकियाँ लगाकर मोती चुनने को आतुर और अधीर हो उठा है। कवि अराज की साहित्य-साधना मेँ परिवर्तन का जो यह सजीव और सात्विक स्तर उभरा है वह एकाएक न होकर कवि की निरन्तर सोच और जीवन-निष्कर्ष-प्राप्ति को रेखाङ्कित करता है । सन् १६६१ मेँ प्रकाशित काव्य कृति 'तरङ्गोँ के ताल' कवि के सात्विक मन की झङ्कृत स्वर लहरी है।

❑ यदि सन् १६८४ मेँ कवि अराज ने पाँच अध्यायोँ मेँ राम के सम्पूर्ण जीवन वृत्त को 'रामादर्श' काव्य के रूप मेँ अभिव्यक्ति दी है तो सन् १६६४ मेँ 'श्री राम कथा' महाकाव्य लिखकर कवि अराज ने मानस की परम्परा

में एक नई कड़ी का सूत्रपात किया है जो रचनात्मक सौरभ से परिपूर्ण कृति है।

❑ काव्य-सृजन के अतिरिक्त डॉ० अराज के चार उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं। जो क्रमशः 'अशान्त चिता' (१९६५), 'बढ़ते चरण' (१९६६), 'बन्धन की प्यास' (१९८२), 'राज्यदान' (१९८२) के नाम से प्रकाशित हैं । डॉ० अराज के उपन्यासों में वर्तमान सामाजिक सरोकारों के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक दृष्टि का भी सजीव-प्रामाणिक उद्घाटन हुआ है।

❑ भाषा, लिपि और लिपि-विज्ञान के क्षेत्र में भी डॉ० अराज का प्रदेय रेखाङ्कित किया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रमुख कृतियाँ निम्न रूप से परिगणित की जा सकती है – 'भारतीय समान लिपि अरा' (१९७१), 'लिपि-विज्ञान और नागरी लिपि' (१९७४), 'अरा के गुण' (१९७७), 'नागरी लिपि का उद्भव और विकास' (१९७८), 'नागरी लिपि : समस्याएँ और समाधान' (१९७१) 'भाषा, लिपि और भारत' (१९८४), 'साहित्य की दिशा' (१९६५) आदि अनेक कृतियाँ हैं जो इस क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण देन कही जा सकती हैं।

❑ डॉ० अराज के भीतर छिपा बैठा साहित्यकार उसे हर बार कुछ नया अद्वितीय, अतुलनीय और मौलिक कहने को बाध्य करता है। यही कारण है कि डॉ० अराज ने विविध सन्दर्भों से विमण्डित कृतियों की रचना की है। इस प्रसङ्ग में 'ईश्वर में विश्वास' (१९८०), 'मानव समाज' (१९८०), 'कुछ कहानियाँ', (१९६३), 'साहित्यिक निबन्ध' (१९६४), 'धार्मिक चिन्तन' (१९६३), आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

❑ मेरी दृष्टि में डॉ० अराज की साहित्य-साधना की निरन्तर उपेक्षा हुई है। यह उपेक्षा जाने-अजाने किस रूप में हुई है कहना असङ्गत लगता है परन्तु इस साहित्यकार के व्यापक साहित्य-साधना के फलक के परिप्रेक्ष्य में बहुत कहने-सुनने को बाकी है। कुछ मित्रों की दृष्टि इस ओर गई भी है 'साहित्य-साधक अराज', सम्पादक - डॉ० सुन्दरलाल कथूरिया (१९८०), 'चेतना के पङ्ख - डॉ० अराज का व्यक्तित्व और कृतित्व', सम्पादक - डॉ० अशोक भाटिया (१९९५) कृतियाँ प्रमाण रूप में कही जा सकती हैं फिर भी अभी अराज को समझने-समझाने को बहुत कुछ शेष है ऐसी मेरी मान्यता है।

डॉ० अराज ने आज तक जो कुछ भी लिखा है वह सार्थक है। इस सम्पूर्ण सृजन में सर्जक की भावना, विचार, सोच एवं चिन्तन, शोध-दृष्टि, आध्यात्मिक आस्था, विश्वास, लिपि-ज्ञान, भाषा-पाण्डित्य का समग्र प्रभाव मणि-कञ्चन-सा आकर्षण लिये है । कवि अराज की सोच में सामाजिक व राष्ट्रीय सरोकार सर्वत्र मुखर है। दायित्वबोध के प्रति अराज ईमानदारी के साथ सजग है।

डॉ० अराज अपनी सम्पूर्ण रचना-यात्रा में स्वच्छन्दता और उन्मुक्तता के साथ सक्रिय परिलक्षित होता है । उस की पैनी दृष्टि एक ओर असीम आकाश की लीलामयी असङ्ख्य क्रियाओं के साथ नर्तन करती है तो दूसरी ओर अपनी वास्तविक जमीन के अणु-परमाणु से अविभाज्य रूप से सञ्युक्त है। वस्तुतः यह अराज का सृजन-कौशल है जो हर स्तर पर आम आदमी के सुख-दुःख से जुड़कर उसे सम्पूर्ण रूप में यथातथ्य वाणी देता है। सम सामयिक जीवन के प्रति कवि अराज की सृजन-दृष्टि सर्वत्र सत्य के अन्वेषण में समर्पित है। वह आम आदमी के सुख-दुःख में व्याकुल है और यथाशक्ति आगे बढ़कर साझेदारी निभाता अराज की मूल सम्वेदनाओं में मानव-मन की पर्त-दर-पर्त कथा-व्यथा को ...जने और उसे यथा- अवसर अभिव्यक्ति प्रदान करने की अद्भुत कला है।

विसङ्गतियों में सङ्गीत की खोज, विद्रूपताओं में अविचल भाव सत्यानुसरण, विकृतियों में सहज सृजन के प्रति अकम्प सङ्कल्प,अन्धकार प्रकाश के प्रति अटूट आस्था, विनाश के घोर ताण्डव में निर्माण के प्रति ...लव्य-निष्ठा अराज साहित्य की कतिपय ऐसी अनुकरणीय विशेषताएँ हैं वर्तमान त्रासदी-भरे समाज में तोड़ने की अपेक्षा जोड़ने की ललक से ...ामण्डित हैं ऐसी मेरी सोच है। डॉ० अराज मित्रों के मित्र हैं परन्तु ...- भाषण में वे सर्वत्र निर्भीक भाव से अपने पक्ष को प्रस्तुत करने में कभी ...कोच अनुभव नहीं करते । जन-कल्याण अराज-साहित्य की धुरी है। ...ीय-सामाजिक सरोकारों के प्रति सर्जक की अकम्प आस्था, मानव ...ओं के प्रति सजगता और असीम सत्ता के प्रति समर्पण-भावना अराज साहिय पूर्णतः पारदर्शी बनाती हैं। यदि अराज के साहित्य पर गम्भीर सोच के कुछ कहा जाये तो निश्चय ही स्वीकार करना होगा कि उनमें विचार, ...ना, शिल्प, भाषा और अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों पर गहरी आस्था

की अन्तरधारा सर्वत्र प्रवाहित है जो गङ्गा की भाँति निर्मल और पावन है।

❑ यदि अराज की सृजन-यात्रा पर एक दृष्टि-निक्षेप करें तो लगता है अनेक पड़ावों और आयामों को पार करती साहित्य-सलिला अवस्था के साथ-साथ प्रवाह और प्रभाव में गतिशील हुई है। मूलतः अराज कवि है। लगभग बारह वर्ष की आयु में 'ओम' उपनाम से भजन-लेखन से आरब्ध कवि अराज की काव्य-साधना 'हँसते-रोते आँसू' में यौवनी उन्माद में मुखर दिखाई देती है। 'क्षितिज की खोज' की रचना में कवि अराज छायावादी-रोमानियत के रङ्ग में रँगा परिलक्षित होता है। 'सींग पर उगी हुई लाश' कवि अराज की एक ऐसी लम्बी प्रबन्धात्मक कविता है जो युगीन त्रासदी से पोर-पोर भीगी है। 'सत्यज' कवि अराज की प्राणवान कृति है। यह कवि के मौलिक चिन्तन और गम्भीर सोच की प्रतिनिधि रचना है जहाँ मानव गरिमा के प्रति कवि की अटूट आस्था और प्रतिबद्धता अपने मौलिक अन्दाज में मुखरित हुई है।

❑ अपने जीवन के साठ वर्ष पार-करते-करते कवि अराज भी अपवाद नहीं रहा। वह काव्यात्मक ऊर्जा को आध्यात्मिक ताने-बाने के शाश्वत स्वर में डूबने-उतराने के लिए मनसा-वाचा-कर्मणा समर्पित दिखाई देने लगा। मैं इसे कवि अराज पर भारतीय सन्स्कृति के उज्ज्वल पक्ष का प्रबल प्रभाव मानता हूँ जिसके आकर्षण से कोई भी सात्विक पुरुष और साधु आत्मा अपने आप को अछूता नहीं रख सकता। वस्तुतः ज्ञान और सृजन की यह अवधारणा किसी सर्जक को अपनी सर्जना में पराकाष्ठा तक पहुँचा सकती है। कवि अराज इस दृष्टि से बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने ठीक समय पर आध्यात्मिक स्तर पर जन-कल्याण की सोच को सृजनके धरातल पर साकार रूप प्रदान करने का सङ्कल्प किया है। निश्चय ही प्रभु का गुणगान जनहितकारी है। कर्त्ता का भी इसमें लाभ अन्तर्निहित है। सन् १९५८ में पुच्छल दोहे लिखने वाला युवा कवि सम्भवतः परिकल्पना भी नहीं कर सका होगा कि वह साठ पार करते-करते अपनी आध्यात्मिक-अभिव्यक्ति के लिए दोहा छन्द को अपने प्रयोजनमूलक उद्देश्यसे सर्वोत्तम मानकर रचनात्मक प्रौढ़ि को सार्थकता प्रदान करेगा।

❑ अराज-दोहावली घोर नैराश्य के वात्याचक्र में सहृदय के लिए अमृत

का आधार प्रस्तुत करनेकी शक्ति-सामर्थ्य से समृद्ध है । दोहावलीके वस्तु-विधान में वैविध्य भावनाओं की उत्ताल तरङ्गों से सम्वेदनशील मन को एक अनोखा सकून देता है। अराज ने अपनी दोहावली के माध्यम से शृङ्गार, नीति, राजनीति, अर्थतन्त्र, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के साथ-साथ सम्पूर्ण मानवता के सन्दर्भ में अपनी गहरी अनुभूतियों को सम्वेदना के प्रभावशाली आयाम देकर जन-मन-रञ्जन हेतु ठोस भूमि का निर्माण किया । दोहावली में सङ्ग्रहीत हर दोहे में रचनात्मक सोच, विवेचनात्मक उत्कर्ष और दायित्व बोध को कलात्मक शिल्प विधान से अलौकिक आनन्दानुभूति के क्षितिज तक पहुँचाने का सार्थक प्रयास किया गया है। विषय वैविध्य ने दोहावली को जहाँ असीम आकाश का विस्तार प्रदान किया है वहाँ भक्ति भावना के अनन्त सागर में बहुमूल्य रत्नों के बीच कहीं-कहीं शृङ्गार की सीपियों की छवि-छटा भी यथार्थ जीवन के आकलन में कवि की ऐतिहासिक अनिवार्यता के प्रति जाने-अनजाने आग्रह को उजागर करती है।

❑ वैसे जहाँ तक अराज के आध्यात्मिक पक्ष का सृजन है उसे कुल मिलाकर देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि यह कवि बाल्मीकि, तुलसी, और मैथिलीशरण गुप्त की राम-भक्ति शाखा की परम्परा का विनीत और प्रबल प्रवाचक है। अराज का राम-काव्य, 'श्री रामकथा' हो अथवा 'श्री राम जप' राममय भक्त के हृदय से प्रस्कुटित भाव-गङ्गा का अद्वितीय सृजन कहा जा सकता है। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के प्रति डॉ० अराज का समर्पण भाव त्रासद परिवेश में सन्स्कारशील हो जीने की शैली के अन्तर्गत समाहित प्रतीत होता है। राम के प्रति डॉ० अराज का अनन्य भक्तिभाव अप्रतिम कहा जा सकता है । दिव्य और अलौकिक राम के चरित्र का गुणगाान समसामयिक साहित्यकारों, कवियों द्वारा जो जिस रूप में उपलब्ध है, उसकी तुलना में कविवर अराज की राम के प्रति समर्पण और भक्ति-भावना से दोहा छन्दों में निसृत काव्य-गङ्गा (दोहा छन्द में) का अविरल प्रवाह अपने आकार और प्रकार में विपुल तो है ही, उसे भक्त हृदय की सात्विक गुहार के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। दोहा-जैसे अति सामान्य छन्द के माध्यम से कवि अराज ने गहरी अनुभूतियों की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत कर राम के प्रति जोश, श्रद्धा एवम् प्रेम भाव अभिव्यक्त किया है । वह श्रद्धा के स्तर पर नीलगगन-सा विस्तार लिए है। राम के जीवन-

सन्दर्भों के नाना सजीव दृश्यों, असीम कौशल और आलौकिक छवियों के प्रस्तुतिकरण के द्वारा डॉ० अराज ने वर्तमान अधःपतन के कगार पर ख सन्सार को आदर्शों और जीवनमूल्यों के प्रति आकर्षित करने का सफ प्रयास किया है। सूत्रात्मकता और सङ्केतधर्मिता ने कवि अराज की सृ शक्ति को गम्भीरता प्रदान की है जो दार्शनिक भावमुद्रा में किसी भक्त की सहज अभिव्यक्ति कही जा सकती है। राम-कथा का सूत्र अत्यन्त प्राचं होते हुए भी अराज ने अपनी सूझ-बूझ, सोच, सम्वेदना और अभिव्यक्ति-कौश से उसे नवीनता के सौरभ से अत्यन्त ग्राह्य बना दिया है। अराज की दोहाव भाव के स्तर पर यदि महासागर की अतल गहराइयों का स्पर्श करती है कलात्मक अभिव्यक्ति और भाषा-शिल्प की सञ्योजना के क्षेत्र में कवि की ग पकड़ को प्रमाणित भी करती है।

❑ डॉ० अराज ने अब तक लग-भग एक हजार दोहों की रचना की जो अनेक रूप में प्रकाशित हुए हैं राम के प्रति कवि का अनुराग, समर्पण-भाव और आस्था उसे भक्त और सन्त कोटि में खड़ा करती है। सच्चा सन्त अ महात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रत्येक क्रिया-कलाप में दिव्य और विराट शक्ति दर्शन करता है। अराज ने राम के सङ्केत पर सम्पूर्ण भूमण्डल और वायुमण को नाचते-थिरकते अनुभव किया है । इस सन्दर्भ में अराजकृत निम्न द अवलोकनीय है —

*राम नाम के तार पर, वायु छेड़ती तान।*
*उत्तर से दक्षिण तलक, सुनते सन्त महान।।*

*- अराज दोहावली, दोहा ३८१*

❑ नाम महिमा हमारी भारतीय सन्स्कृति और धार्मिक अनुष्ठान-परम्परा अविभाज्य अङ्ग रहा है। और अराज ने भी इस सत्य की अनिवार्यता को अनु है, जब वह कह उठता है —

*राम नाम लेते मिले, चिन्तामणि हर बार।*
*एक राम के नाम पर, कोटि जन्म बलिहार।।*

*- वही, दोहा ३८५*

❑ अन्यत्र एक दोहे में कवि अराज इसी सन्दर्भ में राम नाम की मं

का उल्लेख करते हुए निवेदित करता है—

*राम-राम रसना रटे, उर भुज राजे राम।*
*राम-धर्म मण्डित रहे, जीवन का हर काम।।*
*- वही, दोहा ३६६*

❑ अराजकृत दोहावली मे ँ नाना छवियो ँ और वर्णो ँ के दोहे उपलब्ध हैँ। यह अलग बात है कि परिमाण की दृष्टि से भक्ति के दोहो ँ का बाहुल्य है । यह राम-भक्त अराज की मर्यादा कही जा सकती है।देश-धर्म और साम्प्रदायिक सद्भाव के सन्दर्भ मे ँ भी कवि अराज का चिन्तन उसके अनेक दोहो ँ मे ँ अभिव्यक्त हुआ है, यथा निम्न दोहे का मर्म वर्तमान राष्ट्रीय सन्दर्भों ँ से जोड़कर देखा जा सकता है—

*हिन्दु बुद्ध मुस्लिम हुआ, या ईसा का भक्त।*
*किन्तु बदल पाया नही ँ, मानव अपना रक्त।।*
*- वही, दोहा ४६६*

❑ अराजकृत दोहावली मे ँ सङ्ग्रहीत कतिपय दोहे राम-भक्त अराज की भक्ति-भावना की वर्तमान अभिव्यक्ति के साथ सङ्गति नही ँ दे पा रहे हैँ। ऐसे दोहो ँ को यहाँ देने मे ँ कवि अराज के पास सङ्गत उत्तर हो सकता है, हो भी, परन्तु भक्ति के प्रवाह मेँ आकण्ठ डुबकियाँ लगाने वाले सम्वेदनशील मन मेँ ऐसे दोहे मोह-भङ्ग का कारण बनते हैँ। यथा एक उदाहरण देखिए—

*हँसती वे बस मे ँ खड़ी ँ, थकन तुम्हारे अङ्ग।*
*भीड़ भरी बस मे ँ कहो, क्या-क्या देखे रङ्ग।।*
*- वही दोहा ४६०*

❑ शृङ्गार-भावना की अभिव्यक्ति निश्चय ही काव्यात्मक-कौशल की अपेक्षा रखती है। काव्यकला का साधक शृङ्गार-भावना की अभिव्यक्ति मेँ पाठक या श्रोता को रस-विभोर भी कर सकता है । यह शक्ति-सामार्थ्य कवि अराज के पास भी पर्याप्त है क्यो ँकि उसके पास भाव और काव्यशिल्प की असीम शक्ति है। परन्तु भक्ति-भावना की गङ्गा मेँ श्रद्धा-भावना को ऐसी अभिव्यक्ति सन्सार के मोह-जाल के प्रति आकृष्ट करती है जो ऐसे अवसर पर असङ्गत सी जान पड़ती है। इतना ही नहीँ दोहावली की गम्भीरता को कतिपय अन्य

दोहे भी आकाश से धरती पर ला पटकते हैं यथा —

*सुविधाओं की राशनिङ्ग, बैङ्क-राशि के रेट।*
*बढ़ सकता कैसे भला, किसी दीन का पेट।।*
*- वही दोहा ४८१*

❑ वस्तुतः ऐसे दोहों का महत्व अन्यत्र बहुत अधिक हो सकता है प आध्यात्मिक प्रसङ्गों में इनसे बच जाना श्रेयस्कर होता है। ऐसी मेरी है। यदि ऐसे कतिपय सन्दर्भों को अदेखा कर दिया जाये तो डॉ० अराज दोहावली भक्तियुग की अनेक रचनाओं से सवाई बैठती है।

❑ डॉ० अराज का भाव-विधान जितना सूक्ष्म, गम्भीर और व्यापक है उ ही उन का शिल्पगत वैभव भी अलङ्कार-महिमा-मण्डित है। अपने शिल्प नि में कवि नवीनता लिये है। भाषा प्रयोग की सूझबूझ अराज की भाषागत साम को उजागर करती है। शब्द-विधान, शब्द-प्रयोग और शब्द-सण्रचना में अराज का कौशल अद्वितीय है। वस्तु-विधान, बिम्ब-विधान के क्षेत्र में व परम्परावादी ही नहीं है अपितु मौलिक दृष्टि लेकर भी चला है। निश्चय कवि अराज के बिम्ब और प्रतीक कतिपय स्थलो पर न केवल मौलि उद्भावनाओं को पुष्ट करते हैं अपितु काव्य-वैभव को समृद्ध भी बनाते हैं भाषा-प्रयोग में व्यावहारिकता की सहज प्रवृत्ति के द्वारा कवि अराज ने लोकोक्ति एवं मुहावरों के माध्यम से वस्तु विधान की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि है। एक प्रयोग देखिए —

*जग-जीवन सुखमय रहे, फिर अध्यातम ग्यान।*
*बिना नींव कैसे टिके, आलीशान मकान।।*
- वही, दोहा १३८

❑ यहाँ यह कहना भी असङ्गत न होगा कि कवि का विपुल भाषाज्ञा उसके कथ्य को धारदार बनाता है। नाना भाषाओं का विद्वान होने के कार डॉ० अराज की भाषा में प्रायः सभी प्रकार के भाषा-प्रयोग उपलब्ध हो जा हैं। उर्दू शब्दों का सहज-सटीक प्रयोग इस सन्दर्भ में रेखाङ्कित करने यो है। उपर्युक्त दोहे की दूसरी पङ्क्ति के सहज शब्द-शिल्प में अनेक अर्थ छवियों को उद्घाटित करने की सामार्थ्य उपलब्ध की है। भाषा-प्रयोग

द्वारा वातावरण-निर्माण चित्रात्मकता, और मूर्त-अमूर्त तथा अप्रस्तुत-विधान के क्षेत्र मेँ कवि अराज के काव्य मेँ अनुपम वैविध्य के साथ एक मधुर लालित्य की सुन्दर झाँकी उपलब्ध है। कहीँ-कहीँ दोहे की मर्यादा निर्वाह के कारण भाषा-प्रयोग मेँ शब्द-रचना के साथ खिलवाड़ भी हुई है किन्तु अर्थ निर्वाह मेँ ऐसे प्रयोग भी बाधक नहीँ हैँ। शायद लिपि-शास्त्री ऐसे स्थलोँ पर कवि अराज पर हावी हो गया है । जो हो, कवि अराज अपने कथ्य और शिल्प मेँ नवीनता और सरसता के सञ्योजन मेँ सिद्ध-हस्त है।

❑ डॉ० अराज ने दोहा-छन्द के माध्यम से भक्ति-भावना का जो शङ्खनाद किया है वह वर्तमान त्रासद और स्वार्थी परिवेश के लिए एकदम लीक से हटकर किया गया सङ्कल्प है। इस शिव सङ्कल्प मेँ परान्तः सुखाय और स्वान्तःसुखाय दोनोँ ही दृष्टियोँ से मानव-मात्र के कल्याण की चिन्ता और सोच की गहन-गम्भीर प्रतिध्वनि सुनाई देती है। 'अनामयुग' के बाद कवि के चिन्तन मेँ गहरा बदलाव देखा जा रहा है जहाँ भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति के द्वारा सान्सारिक तृष्णाओँ और उन्हेँ पाने की मिथ्या दौड़ के लिए सन्सार की असारता की पुनः उद्घोषणाओँ का स्वर मुखर हुआ है। डॉ० अराज ने जीवन को अपने ढङ्ग से भरपूर जिया है और अपने ढङ्ग से समसामयिक हलचलोँ पर लेखन भी खूब किया है। इस स्तर पर आकर कवि की सोच अन्तर्मुखी हुई है यह चिन्तन-मनन और निष्कर्षोँ के परिप्रेक्ष्य मेँ प्रौढ़ि की चरमावस्था की ओर प्रस्थान कहा जा सकता है।

❑ मैँ इस अवसर पर अपने मित्र सहधर्मी, सहकर्मी, सहयात्री डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' के अविराम लेखन, अटूट भक्तिभाव और जन-कल्याण के प्रति समर्पण की निष्काम कामना करता हूँ । ऐसे भक्तिभाव-प्रवण, माँ शारदा के वरद पुत्र और मानवोचित गुणोँ से विभूषित कवि अराज की साधना की चरमप्राप्ति के लिए किये जा रहे हर सारस्वत अनुष्ठान पर मुझे गर्व है। डॉ० अराज अपनी साहित्य-यात्रा मेँ निरन्तरता बनाए रखेँ और प्रभु के गुणगान के द्वारा जन-कल्याण की अगुवाई मेँ सतत सक्रिय रहेँ इस आस्था और विश्वास के साथ कवि की नवीनतम कृति का अपने निम्नलिखत दोहे के साथ स्वागत करता हूँ -

*ओम नाम उच्चार कर, जीवन को लो तार।*
*आप करेंगे राम ही, सबकी नौका पार।।*

ओम् शिव !

सम्पर्क :

सी-५३३, विकासपु
नई दिल्ली-११००१

# ३. अराज दोहावली [1]

- डॉ० कैलाश चन्द्र भाटिया

❑ कवि अराज की लेखनी से अब तक श्री राम पर आधारित कई काव्य ग्रन्थ तथा पाठ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें से 'श्री रामादर्श', श्री राम कथामणि', 'श्री राम रस', 'श्री रामचिन्तामण', 'श्री राम प्रेम रत्नावली', 'श्री राम भक्ति दोहावली', 'श्री राम भक्ति सीढ़ी', 'श्री राम कथा' (महाकाव्य), 'श्री राम भजनामृत' और सर्वोपरि 'श्री राम जप' उल्लेखनीय हैं।

❑ ऐसे रामभक्त श्री अराज की अन्य काव्यकृतियाँ भी हैं जिनमें से 'सत्यज' (खण्डकाव्य) तथा गीतिकाव्य, गद्य काव्य, नवगीत हैं। 'हँसते रोते आँसू' के रूप में प्रथम रचना सन् १९६३ ई० में ही प्रकाशित हो गई थी।

❑ लिपि-शास्त्र के पंडित डॉ० अराज की साहित्य-साधना भी सराहनीय है। विविध- विधाओं में उन्होंने लिखा पर उन सबमें काव्य-रचना शीर्ष पर निरन्तर बनी रही। उपन्यासकार के रूप में आपकी कृतियाँ-अशान्त चिता, बढ़ते चरण, बन्धन की प्यास, राज्यदान, धर्म चिन्तक के रूप में 'ईश्वर में विश्वास' 'मानव समाज' 'धार्मिक चिन्तन' उल्लेखनीय हैं। अराज की विविध प्रकार की' रचनाएँ 'कृति पत्रिका' (१९९२) एक व दो में संकलित हैं। इन सभी कृतियों में मानवीय मूल्य तथा भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों' को सम्हाल कर पिरोया गया है। उनके परवर्ती साहित्य पर टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० देवराज पथिक ने अभिव्यक्त किया है —

❑ "अराज के परवर्ती साहित्य में सन्तों, सूफियों, समाज सुधारकों, मुनियो और मनीषियो की तपोभूमि की सात्विकता, पवित्रता और महिमामण्डित चिन्तन का स्वर अधिक ऊँचे उद्घोष के साथ मुखरित हुआ है। भावना के स्तर पर अराज की हर कृति *माटी की महक* के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए प्रतिबद्ध है।"

❑ इसके लिए उन्होंने अपनाया सर्वाधिक लघु छन्द-दोहा।

---

*१. अराज दोहावली-डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' संस्करण-७, मुद्रण-१, सन् १९९७ ई०, एकता प्रकाशन, बी-२-बी-३४, जनकपुरी, नई दिल्ली-५८, मूल्य-पचास रुपये पृ० सं० ७२।*

## दोहा छन्द

❑ दोहा छन्द काफ़ी प्राचीन काल से आज तक प्रयोग में आ रहा है। प्राकृ भाषा में भी इसका प्रचुर प्रयोग मिलता है जिसको *'दोहड़िका'* कहा गया 'दूहा' का प्रयोग भी मिलता है। संस्कृत में 'छन्द कौस्तुभ' (राधा दामोद में इसको ही *'द्विपथा'* की संज्ञा दी गई जिसका लक्षण इस प्रकार दिया गया जिस छन्द का पूर्वार्द्ध तेरह मात्रओं से रचित हो तथा उत्तरादर्ध में ग्या मात्रएँ हों साथ में यह लक्षण दोनों दलों में घटित हो तो वह 'द्विपथ मात्रिक वृत्त कहलाता है (यस्य त्रयोदशभिः एकादशभिश्च कलाभिः पूर्वार्द्ध तथोत्तरादर्ध च तत् द्विपथा छन्दः) उदाहरण रूप में जो छन्द प्रस्तुत कि गया है, वह इस प्रकार है –

*चरण सरोरुहमस्तु ह्रदि, मद्वचने तव नाम।*
*राजतु सर्वदा नयने, तव रूपः श्री राम।।*

❑ इस सर्वप्रिय छन्द 'दोहा' में कविवर अराज ने एक सहस्र से अधि दोहों की रचना की जिनमें से प्रस्तुत संग्रह में *सात सौ दो* मात्र रखे हैं इन दोहों विषयक्रम से नहीं, कोश-क्रम से (अकारादि क्रमशः) रखा ग है।

❑ अराज ने पुस्तक के प्रारम्भ में लेखकीय में यह भी स्पष्ट किया है आज से चार दशक पूर्व इस छन्द के साथ नए प्रकार का प्रयोग भी कि गया जिसको उन्होंने 'पुच्छल दोहे' की संज्ञा दी है। उदाहरणार्थ एक पुच्छ दोहे का आनन्द लीजिए –

*जो नर विद्याहीन है, होत न उसका मान।*
*दो पैरो वाला उसे, एक जानवर जान।।*

*सिर्फ़ पूँछ की है कसर।*

❑ वर्तमान में कवि सम्मेलनों में इस प्रकार के दोहों का पुनः प्रच हो गया है जिसको श्रोता सराहते हैं फलतः इस प्रकार के लेखन की ओर कवि प्रोत्साहित हुए हैं। इस प्रकार के दोहों को *दुमदार* दोहे कहा ज है जिसको अराज ने 'पुच्छल' कहा था।

❑ इस 'दोहावली' में सर्वाधिक दोहे 'राम-भक्ति' पर आधारित हैं। इनमें से कई दोहे राम-सम्बन्धित अराज के अन्य ग्रन्थों में भी हैं। कुछ केवल अराज दोहावली में ही हैं। इस संकलन की विशेषता है अकारादिक्रम। ऐसी स्थिति में जब दोहे के प्रारम्भ में 'राम' शब्द का प्रयोग होगा तो वह एक स्थान पर स्वतः (दोहा सं० पाँच सौ छब्बीस से पाँच सौ छियासठ तक) आ गए हैं। वह स्वयं मानते हैं कि *नीरोग* रहना चाहते हो तो 'राम-रोग' लगा लो —

*राम रोग जिसको लगा, वही हुआ नीरोग।*
*राम-प्रेम रसना चखे, फीके जग के भोग।। (५६०)*

❑ राम-नाम के स्मरण मात्र से मुक्ति मिल जाती है —

*श्वास बना ले सुमरनी, जीभा उँगली फेर।*
*राम-चरण लुण्ठित हृदय, फिर न मुक्ति में देर। (६२४)*

❑ यह नाम-महिमा ही है जिससे, चिन्तामणि' प्राप्त हो जाती है —

*राम नाम लेते मिले, चिन्तामणि हर बार।*
*एक 'राम के नाम' पर, कोटि जन्म बलिहार।। (वही, दो० ५४२)*

❑ इसी सन्दर्भ में विशाल रूपक पर अपने को केन्द्रित कीजिए —

*राम नाम के तार पर, वायु छेड़ती तान।*
*उत्तर से दक्षिण तलक, सुनते सन्त महान।। (वही, दो० ५३८)*

❑ राम-नाम के प्रति यह अनुराग राम-भक्त तुलसीदास में अनन्य रूप में था जिसका प्रतिबिम्ब अराज के काव्य में भी दर्शित होता है। राम का प्रेम-पाश उन्हें निरन्तर समीप खींचता रहता है —

*भूमि-भाव श्री राम से, उगे पुष्प की बास।*
*प्रेमपाश श्री राम का, सदा खींचता पास।। (वही, दो० ४६४)*

❑ राम के प्रति उनका समर्पित भाव इतना अनन्य है कि भावी पीढ़ी में डॉ० अराज रामभक्त सन्त की कोटि में विराजे हुए आज दृष्टिगत हो रहे हैं—

*जल जीवन को खींचता, द्रवित राम का प्रेम।*
*गले उगे कण कण सदा, उसी राम के नेम।*

❑ अतएव वह चाहते हैं कि उनको चरण-कमल की प्राप्ति हो –

*चरण कमल की भक्ति दें, मुझको रघुवर राम।*
*श्वास श्वास मनका चले, लेकर हरि का नाम।।* (वही, दो०

❑ डॉ० अराज की इस दोहावली में नीतिपरक दोहों की संख्या भी
है। जन-कल्याण की भावना अन्तर्धारा की भाँति अद्योपान्त व्याप्त है।
में सर्वाधिक बधिक है अभिमान-अहंकार –

*अहङ्कार का मूल है, गड़ा हृदय के बीच।*
*इसे न ममता वारि से, बार बार नर सींच।।*

*अहङ्कार ने दे दिया, दानव का सा दर्प।*
*मनुज फिरे फुफकारता, बनकर जैसे सर्प।।*

*(दोहा क्रमांक ३६-४०)*

❑ यही 'मैं' पन है जिससे प्रगति में बाधा पड़ती है –

*मैं न मरा मरती रही, काया चादर स्थूल।*
*मोह-अन्ध मैं, भोगता, पड़ी चित्त पर धूल।।* (वही, दो० ४६

*मैं-मेरी में डूबकर, दुखिया हुआ अराज।*
*राम शीश मेरे रखो, तू-तेरी का ताज।।* (वही, दो० ५०२)

❑ मैं-पन में जब 'क्रोध' का योग हो जाता है तो पतन निश्चित है।
कर्त्तव्य है कि क्रोध टाल दिया जाए –

*क्रोधानल आहुति पड़े, किया कर्म तत्काल।*
*रिक्त मौन की भीख दे, प्रथम क्रोध दे टाल।।* (वही, दो० ९

❑ 'क्रोध' के साथ जब 'हठ' भी आ मिले तो उत्थान कैसे सम्भव है

*हठ के कारागार में, बन्दी जिसका ज्ञान।*
उस पोखर के जीव का, क्या होगा उत्थान।। (वही, दो० ६७

❑ मन में राग-द्वेष हो तो वही आईने में स्वतः प्रतिबिम्बित हो जाते है

*राग द्वेष मन मे रखे, बन्द रहे मुख द्वार।*
*मन का आईना मगर, बन जाता व्यवहार।।* (वही, दो० ५१६)

❑ ऐसी स्थिति में मन में कायरता का भाव घर कर जाए तो देश की लाज बचानी मुश्किल है—

*रख डाला हमने स्वयम्, कायरता सिर ताज।*
*तब रक्षित कैसे रहे, देश-वधू की लाज।। (वही, दो० ५१२)*

❑ जब व्यक्ति 'कामना-कीच' में फँसा हो तो दलदल में और भी फँसता जाता है—

*कामिनि कोमल कमल-सी, प्राप्ति कामना कीच।*
*सुखद देखना दूर से, फँसो न दलदल बीच।। (वही, दो० १२२)*

❑ साहस, सत्य, उत्साह, संयम जैसे गुणों के योग से उद्धार ही सम्भव है—

*साहस सुखमय बीजकर, डाल पसीना खाद।*
*दुख की दृष्टि पले पके, सुख भोगे सुस्वाद। (वही, दो० ६४५)*

❑ 'सत्य और उत्साह' के योग से ही यह सम्भव होगा —

*सत्य और उत्साह का, हो जाये जब योग।*
*कहाँ ठहरते तब वहाँ, अनय दुष्टता रोग।। (वही, दो० ६३१)*

❑ जब 'सन्तोष' का भी इसमें योग हो जाए तो धन की वर्षा स्वतः हो जाएगी तो दान के परनालों से सुख-शान्ति प्राप्त होगी —

*धन बरखा सन्तोष छत, है कामना मुँडेर।*
*परनाले रख दान के, हो न सुख सदन ढेर।। (वही, दो० ३१०)*

❑ सज्जन ही उचित अवसर की पहचान करता है और उस समय का यथोचित व्यवहार करता है —

*मान गँवाता बोलकर, कुसमय मूढ़ अजान।*
*लेकिन सज्जन बोलता, सुसमय कुसमय जान।। (वही, दो० ४७८)*

*काम किया होता सफल, अवसर को पहचान।*
*लाल देखकर मारता, लोहे चोट सुजान।। (वही, दो० ११८)*

❑ नवीन उपमाओं के प्रयोग से जीवनोपयोगी तात्त्विक चिन्तन प्रस्तुत कि गया—

*हुक्के-सा सन्सार यह, पल-पल हो त्यौहार।*
*ताजा तो दे ताजगी, आखिर धूम धुँआर। (वही, दो० ६६७)*

❑ 'नाव' का रूपक तथा उपमा के रूप में प्रयोग कर उससे नई प्रेरणा गई है —

*आदत जल नीचे रहे, ऊपर जीवन-नाव।*
*आदत भर दे नाव को, डूबे जीवन-भाव।*

❑ अपने मत के सत्य की परख के विषय में अराज का मत है—

*आलोचना न सह सके, नहीं तर्क स्वीकार।*
*छेदों वाली नाव-सा, मत डूबे मझधार।। (वही, दो० ४५-५१)*

❑ स्थान-स्थान पर यमक-श्लेष के प्रयोग से शब्द चमत्कार भी दिखाया है—

*होली हो ली उम्र की, जल विषयों की आग।*
*राम सङ्ग में खेल अब, रामरङ्ग की फाग। (वही, दो० ७०*

*हर सरकारी दास यों, कहने को सरकार।*
*पर सच्ची सरकार वे, जिनके सर सर कार।। (वही, दो० ६८*

❑ इन दोहों में सामयिक समस्याएँ भी हैं—

*राजा तो निज नगर में, गये वोट में हार।*
*डाकू रानी जीतकर, मना रही त्यौहार। (वही, दो० ५२१)*

❑ कुछ दोहों में काव्यत्व भी है और भक्ति भी —

*नयन झरोखे से घुसे, चोरी से उर भौन।*
*व्यूह न तोड़ा जब गया, देव विराजे मौन।। (वही, दो० ३२६)*

❑ नयनों की भाषा पर कवि की दृष्टि गई है और वह महाकवि बि की पंक्ति में आ विराजता है —

*भाषा के बन्धन रहे, मूक मार के खेत।*
*बिन बोले सब कह गये, नयनों के संकेत।। (वही, दो० ४५६)*

*भोले नैन न भूलिये, तीखी इनकी धार।*
*बचा नहीँ जिस पर हुआ, नयन कुटिल सर वार।। (वही, दो० ४६६)*

*घूँघट घन मेँ चमक छिन, छिप जाते हैँ नैन।*
*ज्वलन भीति जल जल जिऊँ, इस विद्युत के सैन।। (वही, दो० १७४)*

❑ दोहोँ की भाषा सहज व सरल है। कहीँ-कहीँ अंग्रेजी शब्दोँ का बड़ा सटीक प्रयोग हुआ है —

*जातपात के भेद को, सके न गाँधी मेट।*
*सहज सफलता पा गयी, धन्य धन्य सिग्रेट।। (वही, दो० २१८)*

*कुर्सी मिलते ही लगे, शीघ्र वज़्न को जम्प।*
*क्या कुर्सी मेँ आज कल जड़ देते हैँ पम्प।।*

❑ हास्य-व्यंग्य का पुट भी इस प्रकार के शब्द-प्रयोग से आ गया है —

*न्याय तभी होगा लगेँ, टिकट मुटाई रेट।*
*गौरमेन्ट के कर लगेँ, माप माप कर पेट।। (वही, दो० ३६२)*

❑ इसी प्रकार —

*सुविधाओँ की राशनिङ्ग बैङ्क-राशि के रेट।*
*बढ़ सकता कैसे भला, किसी दीन का पेट। (वही, दो० ६६३)*

❑ डॉ० अराज का लिपिवैज्ञानिक रूप भी छाया रहा है। चन्द्रबिन्दु का प्रयोग शतप्रतिशत शुद्ध रूप मेँ(६६३) किया गया है। सामान्यतः अब चन्द्रबिन्दु के स्थान पर बिन्दु का प्रयोग ही कर दिया जाता है। यहाँ मात्र एक दोहा नमूने के रूप मेँ उसी रूप मेँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जैसा मुद्रित है—

*बिन बाँधे लज्जा-बँधे, पैर भवन मेँ बन्द।*
*तारोँ कीले नयन अहि, क्योँ फिरते स्वच्छन्द।। (वही, दो० ४३७)*

❑ डॉ० अराज शुद्ध वर्तनी के पोषक हैँ। लिपि-विशेषज्ञ होने के नाते वर्तनी की शुद्धता पर बल देना चाहिए। शुद्धता इतनी अधिक है कि शब्द की वर्तनी नितान्त शुद्ध होते हुए भी अपने प्रतिदिन के व्यावहारिक रूप से भिन्न है। यहाँ मात्र कुछ शब्द लिये जा रहे हैँ—

अश्रु - दोहों में व्यवहृत रूप 'अश्रु' —

- अश्रु तुषार गिरा थके, सावन भादों मास।

ज्ञान - दोहों में व्यवहृत रूप 'ज्ञान' —

- ज्ञान कुटिलता धन कला, एक न हो जब पास

☐ इसी प्रकार अनुस्वार (ं) के स्थान पर पंचम वर्ण का प्रयोग सर्वत्र गया है जिससे उच्चारण की शुद्धता पर बल सहज में ही पड़ता है

☐ संगीत - सङ्गीत 'ज्यों सङ्गीत ठगी मृगी, मूँद बैठती नैन' इसी सङ्गी (संगी), अहङ्कार (अहंकार), अङ्ग (अंग), संवेद - सम्वेद।

☐ अक्षर 'अक्षर - अक्षर-अक्षर जो लिखा, अपने हित सम्वेद'। इसका आद्योपान्त किया गया है। अब भविष्य में आशा है कि डॉ० अराज कुछ अ विषयों पर सतसई देंगे, राम भक्ति व नीति परक तो पर्याप्त दोहे से हैं। सम्भव हो तो आज की मूल समस्या 'पर्यावरण' पर दोहे लिखें आशा और आनन्द की सृष्टि हो। इस छोटे-से छन्द 'दोहा' में जो मनु बाँधने की क्षमता है वह बड़े-बड़े छन्दों में नहीं है और संयोग से डॉ० इसके निर्वाह में पर्याप्त पटु एवं सक्षम हैं। इस नवीनतम कृति का स्वागत होगा क्योंकि प्रत्येक दोहे में जन-कल्याण की भावना मुखरित है।

सम्पर्क :
'नन्दन', भारती नगर, मैरिस
अलीगढ़-२०२००१

# ४. 'श्री रामादर्श : एक दृष्टि'

- डॉ० कृष्ण गोपाल मिश्र

❑ 'हँसते-रोते आँसू' (१६६३), 'अनामयुग' (१६७७) और 'सत्यज' (१६८१) के काव्य-कृति-सृजन क्रम मे ँ रचित कविवर ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' की काव्यकृति 'श्री रामादर्श' सर्वथा अभिनव काव्य रचना है। इससे पूर्व की काव्यकृतियो ँ मे ँ कवि ने अपने युग की समस्याओ ँ का सामयिक समाधान खोजने की चेष्टा की है, जबकि इस रचना मे ँ वह मानव मात्र की सनातन पीड़ाओँ के शाश्वत समाधानमेँ व्यस्त हुआ है। यद्यपि इस श्री राम भक्तिपरक काव्य-कृति के पश्चात भी कवि ने 'श्रीराम कथामणि', 'श्रीराम रस', 'श्रीराम चिन्तामणि', 'श्रीराम जप', 'श्रीराम प्रेम रत्नावली', 'श्रीराम भक्ति दोहावली 'श्रीराम भक्ति सीढ़ी', 'श्रीराम कथा', 'श्रीराम भजनामृत' नामक अनेक छोटी-बड़ी रामभक्ति परक काव्य कृतियों ँ का प्रणयन-प्रकाशन किया है, तथापि इन मेँ 'श्रीरामादर्श' सर्वाधिक प्रभाव-सम्पन्न है। डॉ० अराज के भक्ति काव्य का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि 'श्री रामादर्श' की भावपूरित रचना ने ही उन्हेँ रामभक्ति के पथ पर सफलता पूर्वक अग्रसर किया है। इस रचना से उनके हृदय पर श्रीराम के लोकोत्तर-दिव्य-चरित्र का ऐसा सुस्थायी प्रभाव पड़ा है कि उनकी समस्त कवि-वृत्तियाँ राममय हो उठी हैँ और उनकी लेखनी से एक के बाद एक अनेक रामभक्तिपरक रचनाएँ स्वतः अस्तित्त्व पाती चली गयी है ँ।

❑ 'श्रीरामदर्श' काव्य के प्रणयन के सन्दर्भ मेँ कवि की स्वगत अनुभूतियाँ उसी के शब्दो ँ मे ँ उल्लेखनीय हैँ — "रामजी की महती कृपा हुई कि सम्वत् २०४१ वि० की रामनवमी (१०-४-१६८४) को मैँ श्रीराम जी के ध्यान मे ँ खो गया। मुझे लगा कि मेरे चारो ँ ओर भीतर-बाहर 'हर हर बम बम; बम बम हर हर' का नाद गूँज रहा है। उसी के साथ राम अपनी लीला दिखाते रहे और मै ँ उसी श्रुत ताल पर राम की लीला लिखता गया। ऐसा प्रायः होता रहा, दिन मेँ एक बार, दो बार, लगातार कई दिन, कुछ दिन छोड़कर, दिन मे ँ, दो बार, लगातार कई दिन, कुछ दिन छोड़कर, दिन मे ँ, रात्रि मे ँ, अनियमित ढंग से। तब की मेरी अवस्था विचित्र थी। रचना-१ नामक मेरी कापी के पन्ने भरते गये और परम कृपालु श्री राम जी की अनुकम्पा से २२ ज्येष्ठ

सम्वत् २०४१ विक्रमी (पंजाबी) (४-६-१९८४ ई०) को यह रामादर्श ग्रन्थ सम्प हुआ।" इस प्रकार प्रभुकृपा से प्रेरित-रचित यह काव्यकृति डॉ० अराज के मौलि रामकाव्य के रूप में प्रस्तुत हुई है। वास्तविकता जो भी हो पर इस र का धार्मिक-साहित्यिक महत्त्व इसकी पंक्ति-पंक्ति से सिद्ध होता है।

'श्री रामादर्श' एक अत्यन्त लघुकाय प्रबन्धकाव्य रचना है। इसका कथा विरल है। कवि ने अपने भक्तिभाव के प्रदर्शन और सुविधाचारित कथ्य के निर के लिये श्रीराम की परम्परागत कथा का आश्रय लिया है। इस कृति में अराज ने 'बाल राम', 'युवा राम', 'तपस्वी राम', 'प्रेमी राम' और 'वीर र नाम से पाँच शीर्षकों में रामकथा कही है। प्रत्येक शीर्षक को उन्होंने अथवा अध्याय आदि के स्थान पर 'छवि' नाम दिया है। प्रथम छवि में राम के जन्म और विद्याध्ययन की कथा है। द्वितीय छवि में कवि ने ताड़ बध, अहल्या उद्धार, सीता-स्वयंवर, राम विवाह आदि की कथा का संयो करते हुए महाराज दशरथ द्वारा राम राज्याभिषेक की घोषणा पर लाकर क को विराम दिया है । तृतीय छवि 'तपस्वी राम' की कथा श्रीराम की वन यात्रा और चित्रकूट मैं राम-भरत के मिलाप से सम्बद्ध है। चतुर्थ छवि मैं खरदू बध, सीता-हरण, और शबरी-प्रसंग की कथाये हैं।

❑ पंचम छवि 'वीर राम' की कथा अन्य छवियों की अपेक्षा अधिक ब कलेवर को संयोजित किये है। इसमें डॉ० अराज ने राम-सुग्रीव मित्रता, सी खोज, लंकायुद्ध, रामराज्याभिषेक, लवकुश जन्म और राम के महाप्रयाण त की कथा कही है। जिस राम कथा के वर्णन में अनेक महाकवियों ने बड़े-ब वृहदाकार ग्रन्थों का प्रणयन किया है, उसी रामकथा को कवि अराज अत्यन्त संक्षिप्त कलेवर में प्रस्तुत करके अपने प्रबन्ध कौशल का परि दिया है।

❑ समीक्ष्य काव्यकृति का कथानक मिश्रित है क्योंकि इसमे श्रीराम परम्परागत कथा को अनेक काल्पनिक मोड़ देकर कवि ने राम कथा को बुद्धि बनाने का प्रयास किया है। उन्होंने इस प्रबन्धकाव्य में राम कथा में प्र अतिमानवीय अंशो को नवीन आयाम देकर उनकी परम्परा से प्र अतिमानवीयता को दूर किया है तथा अपने युग की वैज्ञानिक व तार्किक पृष्ठ पर प्रतिष्ठित किया है। इस प्रयास से कथा में मौलिकता का प्रादुर्भाव हु

है। प्रबन्धकाव्यत्व की दृष्टि से इस रचना का कथा कलेवर विस्तार की अपेक्षा करता है परन्तु कवि ने कथा-सूत्र को अत्यन्त विरल रूप में प्रस्तुत किया है अतः कथानक का विस्तार नहीं हो सका है। कथानक-सौष्ठव की दृष्टि से भी इस रचना का कलेवर बहुत कुछ 'साकेत' की भाँति विशृंखल है। इसमें सुसंगठन का अभाव है। प्रथम छवि से लेकर चतुर्थ छवि तक तो कवि ने कथानक का सन्तुलन बनाये रखा है पर पंचम छवि में राम कथा के अनेक महत्त्वपूर्ण अंशों को एक साथ रखने के कारण सन्तुलन बिगड़ गया है और कथा का प्रभाव भी वर्णनात्मकता के नितान्त अभाव के कारण क्षीण हुआ है। कवि ने मेघनाद, कुम्भकर्ण और रावण जैसे महा पराक्रमी योद्धाओं का संहार मात्र नौ छन्दों में प्रस्तुत करके (पृ०५८) कथा विस्तार के अवसरों की पूरी तरह उपेक्षा कर दी है। स्थान, काल और कार्य की अन्वितियों का इस रचना में सम्यक निर्वाह हुआ है। कथानक की शिथिलता ने केवल प्रभाव की अन्विति को ही भंग किया है।

❑ रामकथा मेँ नवीन उद्‌भावनाओँ की दृष्टि से 'श्रीरामादर्श' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काव्यकृति है। रामकथा के लोक प्रख्यात स्वरूप में डॉ० अराज ने निम्नांकित नवीन उद्‌भावनाएँ प्रस्तुत कर वांछित परिवर्तन-परिवर्द्धन किये है—

१. परम्परागत रामकथा में महर्षि विश्वामित्र के निवेदन करने पर श्रीराम को महाराज दशरथ द्वारा ताड़का आदि का बध करने के लिये भेजा जाता है; किन्तु 'श्रीरामादर्श' में श्रीराम स्वयं अपने पिता महाराज दशरथ से राक्षसों का बध करने की आज्ञा माँगते हैं। (पृ०२६) इस नवीन उद्‌भावना से श्रीराम के चरित्रांकन में निखार आया है।

२. अहल्या के उद्धार के प्रसंग मेँ भी अराज जी ने नितान्त नवीन दृष्टि दी है। उन्होँ ने अहल्या को निर्जीव शिला न मानकर पति द्वारा परित्यक्त और समाज द्वारा बहिष्कृत पीड़ित नारी माना है, जो श्रीराम के सुयश से प्रभावित होकर उनसे न्यायोचित स्थान दिलाने की विनम्र याचना करती है।(पृ०२८) श्री राम उसे उसका खोया सम्मान वापस दिलाकर मर्यादा की रक्षा करते हैँ।

इस उद्‌भावना से निष्प्राण शिला का मानवी रूप में प्रवर्तन, जो अकल्पनीय व असत्य भासित होता था; बुद्धि ग्राह्‌य तर्क सम्मत सत्य बन सका

है । आज आवश्यकता इस बात की ही है कि हम अपने पौराणिक आख्यानों की अतिमानवीय कथाओं का सम्यक् अनुशीलन कर पुनर्व्याख्यायित करें ताकि वे विश्वसनीय बन सकें। इस दिशा में डॉ० अराजकृत प्रस्तुत उद्भावना विशेष रूप से सराहनीय है।

३. परम्परित कथानक में श्रीराम से हनुमान की भेंट ऋष्यमूक पर्वत पर होती है परन्तु 'श्रीरामादर्श' में शिव के अवतार हनुमान प्रभु श्रीराम का दर्शन करने के लिये उनके ऋष्यमूक पहुँचने से पूर्व ही आ जाते हैं और मनोवांछित वरदान प्राप्त करते हैं। (पृ०३७) इस उद्भावना का उद्देश्य श्रीराम भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करना है।

४. 'श्री रामादर्श' काव्यकृति की चौथी छवि में 'कैटभ' नामक राक्षस का उल्लेख हुआ है। (पृ०४८) यह उल्लेख कवि-कल्पित है । सम्भवतः 'रामचरित मानस' में वर्णित 'कबन्ध' को कवि ने कैटभ संज्ञा दी है। इस नवीन उद्भावना का कथानक में विशेष महत्त्व नहीं है।

५. श्री हनुमान की पूँछ जलने के सन्दर्भ में भी कवि अराज ने अतिमानवीय-तत्त्व को दूर किया है और आग लगने के प्रसंग में लंकादहन को निशाचरों की ही असावधानी दर्शाकर बुद्धिगम्य सिद्ध किया है। (पृ०५६)

६. राम कथा के लगभग सभी आधार ग्रन्थों में लवकुश का जन्म महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में वर्णित है पर कवि अराज ने सीता परित्याग को अस्वीकार करते हुए लवकुश । की उपस्थिति ऋषि-आश्रम में विद्याध्ययन के सन्दर्भ में दर्शायी है। (पृ०५६) यह उद्भावना राम पर लगे मिथ्या आरोपों का परिहार कर उनके यश की रक्षा करती है । डॉ० रामकुमार वर्मा, फादर कामिल बुल्के आदि विद्वानों ने भी सीता परित्याग को रामकथा का अनिष्टकर क्षेपक सिद्ध किया है। डॉ० अराज की यह स्थापना इसी दिशा में अग्रसर अभिनव प्रयास है।

७. डॉ० अराज के चरित नायक श्री राम लवकुश के सक्षम हो जाने पर राज्य की बागडोर उन्हें सौंपकर स्वयं आदर्श आर्य राजाओं की परम्परा का अनुकरण करते हुए तपोवन में तपश्चर्यारत हो जाते हैं। (पृ०६०) वे न तो अपने प्रिय लक्ष्मण को मृत्युदण्ड देते हैं और न ही स्वयं समस्त

प्रजाजनों के साथ सशरीर साकेत धाम की यात्रा ही करते हैं। यह उद्भावना भी कथा को व्यवहारिक भावभूमि प्रदान करने के लिये ही प्रस्तुत हुई है।

❑ इस प्रकार इन उद्भावनाओं के माध्यम से डॉ० अराज ने रामकाव्य को युगानुकूल नवीन आवरण प्रदान किया है। इनसे कथानक की रोचकता बढ़ी है, अतिमानवीयता दूर हुई है और वे बुद्धि ग्राह्य बन सके हैं । इन उद्भावनाओं व नवीनताओं ने कहीं भी रामकथा के सांस्कृतिक पक्ष को कोई हानि नहीं पहुँचाई है। इनसे राम कथा पुष्ट हुई है अतः ये सब उद्भावनाएँ स्वागत की अधिकारिणी हैं । इस रचना का काव्यरूप प्रबन्धात्मक है। कवि ने प्रारम्भ में नमस्कारात्मक मंगलाचरण का विधान करके भी इस कृति की प्रबन्धात्मकता की पुष्टि की है।

❑ 'श्रीरामादर्श' काव्य में डॉ० अराज ने रामकथा के सभी पात्रों को कथानक के धरातल पर प्रस्तुत किया है पर वे सभी सूक्ष्म रेखाओं के रूप में ही अंकित हो सके हैं। कथानक की संक्षिप्तता के कारण राम और भरत के अतिरिक्त अन्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट नहीं हो सकी हैं। श्रीराम इस काव्यकृति के नायक हैं और कवि की भक्तिभावना के एकल केन्द्र भी हैं; अतः कवि ने उनके व्यक्तित्व को सजाने सँवारने में ही अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य नियोजित कर दी है । इस कृति के शीर्षकों से भी श्रीराम के चरित्र की प्रधानता का परिचय मिलता है। डॉ० अराज ने श्रीराम को कर्तव्यनिष्ठ तपस्वी वीर के रूप में सर्वत्र अंकित किया है। कर्तव्यपरायणता और पवित्र सेवा भावना उनके चरित्र की मूलभूत विशेषताएँ हैं। उदारता उनमें सर्वत्र व्याप्त है। वे सब के प्रति आदरभाव व्यक्त करते हैं। यहाँ तक कि अयोध्या के बच्चों तक को वे नाम लेकर सस्नेह पुकारते हैं —

*"बड़े राम पर नेह जताते । समवयस्क हँसकर बतियाते ।*
*राम अवध के बच्चों तक को। लेकर नाम सनेह बुलाते।।*
*हर कोई यों समझ रहा था। मेरा ही अधिकार राम पर।।"(पृ०३१)*

❑ श्री राम के समान ही भरत के चरित्र की रेखाएँ भी समीक्ष्य काव्यकृति में अत्यन्त चमकीले रंगों से उकेरी गई हैं। भरत के चरित्र का विशिष्ट बिन्दु 'भायप भक्ति' इस रचना में विशेष रूप से प्रकट हुआ है। राम के दर्शन की

उत्कट अभिलाषा सँजोये वन पथ पर जाते हुए भावुक भरत की अवस्था का जैसा चित्रांकन कविवर डॉ० अराज ने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है —

*"भरत राम लछमन भाभी कह। उठते सहसा दौड़ लगाते।*
*जहाँ राम के चरण पड़े थे। वह रज अपने शीश चढ़ाते।।(वही, पृ० ४०)*

❑ अन्य पात्रों के चरित्र की विशेषताएँ इस रचना में आंशिक रूप में ही प्रस्तुत हुई हैं, अतएव विशेष रूप से विवेचनीय नहीं हैं।

❑ 'श्रीरामादर्श' भक्तिकाव्य है अतः इसमें कवि डॉ० अराज का श्रीराम के प्रति अनन्य भक्तिभाव प्रकट हुआ है। वे मर्यादित भक्ति के समर्थक हैं। उनके काव्य में श्री राम का लोकरक्षक स्वरूप सर्वत्र वंदनीय है। उनकी भक्तिभावना गोस्वामी तुलसीदास जी की भावुक भक्ति के समान सृष्टि में सर्वत्र अपने प्रभु श्री राम का ही दर्शन प्राप्त करती है —

*"राम रमे कण कण में ऐसे। पाटल दल में खुशबू जैसे।*
*राम भाव हैं राम कर्म हैं। राम रूप हैं राम धर्म हैं।*
*राम वर्ण हैं आश्रम हैं वे। राम सृष्टि के रिदय मर्म हैं।।*
*राम जगत के आदि हैं, मध्य वही वे अन्त।*
*एक उन्हे ही पूजते, प्रकृति ग्रन्थ औ सन्त।।"(वही, पृ० १८)*

❑ कवि अराज की कामना है कि यही सर्वव्यापी राम अपने लोकरंजक व लोकरक्षक रूप में उनके ह्रदय में सदा निवास करते रहें —

*"धर्म ह्रदय में शस्त्र कर, उर-भुज अन्स विशाल।*
*कृपा सिन्धु उर में बसो, कौशल्या के लाल।।"(वही, पृ० २५)*

❑ डॉ० अराज की भक्तिभावना समन्वयमूलक है। उन्होंने श्री राम और शिव के समन्वय की सर्वथा युक्तियुक्त व प्रासंगिक व्याख्या की है । उनके विचार में शिवसंकल्प रूप में राम के ह्रदय में सदा निवास करते हैं। शिव संकल्प रूप होने के कारण निराकार हैं, अदृश्य हैं और श्रीराम उन्हीं का कर्म रूप होने के कारण साकार हैं —

*"शिव संकल्प राम में शिव हैं।*
*निराकार शिव कर्म राम है।"(वही, पृ० ३०)*

❑ इस शिवत्वयुक्त राम की प्राप्ति केवल प्रेम-भक्ति के शुचि सरल राज-पथ का अनुसरण करने से ही हो सकती है, यह कविवर अराज की दृढ़ मान्यता है। वे प्रेम की सार्थकता ईश्वर-प्रेम मे ँ मानते है ँ। जब लौकिक क्षेत्रो ँ मे ँ बिखरे हुए प्रेम तत्व को समेट कर भक्त एकाग्र भावसे प्रभु के चरणों ँ में ँ अर्पित करता है तब उस प्रेम के प्रबल-आकर्षण से प्रभु स्वयं ही खि ँचे चले आते हैं ँ। ज्ञानमार्ग से जिसे पाना अति कठिन है वह प्रभु प्रेमपथ पर सहज सुलभ है —

*"प्रभु को खी ँचे चाहिये, शबरी-जैसा प्रेम।*
*धरे धराये रह गये, विद्वत्ता के नेम।।(वही, पृ० ५०)*

❑ 'श्री रामादर्श' मे ँ कविवर अराज ने अपने अध्यात्म दर्शन की प्रस्तुति भी की है। ब्रह्म, जीव, जगत और मोक्ष पर उनके सुन्दर विचार इस रचना मे ँ देखने को मिलते हैं ँ। माया पक्ष पर उन्हों ँने इस कृति में ँ अपने विचार प्रकट नहीं ँ किये हैं ँ। उनके विचार मे ँ अक्षर ब्रह्म ही इस विराट विश्व का हेतु है। वही राम रूप मे ँ सर्वत्र व्याप्त है। वही सबका प्रणतत्व है —

*"यह जग सीता-रूप है, राम शक्ति आकार।*
*राम पुरुष है ँ प्राण है ँ, सिरजन के आधार।।(वही, पृ० १८)*

❑ नश्वर सन्सार के स्वरूप पर भी डॉ० अराज की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है। उन्हो ँने रथचक्र से सन्सार की तुलना की है और उसके उत्थान-पतन को व्याख्यायित किया है —

*"यह सन्सार-चक्र पहिये-सा। रात-दिवस चलता रहता है।*
*एक अरा ऊपर उठता है। एक अरा नीचे गिरता है।।*

*सदा सरकती सन्सृति ऐसे। कौन अमरता लिये पधारा।।"(वही, पृ० ३२)*

❑ इस लघुकाय काव्यकृति मे ँ कवि के जीवनदर्शन की सुन्दर प्रस्तुति हुई है। जीवन संघर्ष के विविध पक्षों ँ के उद्‌घाटन, समसामयिक समस्याओं ँ के विवेचन व उनके तात्विक 'समाधानों ँ के प्रस्तुतीकरण एवं संघर्षों ँ के निवारण के लिये प्रस्तुत कवि के विचार समाज के सुखमय विधान के लिये विशेष उपयोगी हैं ँ। इस शताब्दी में ँ अस्पृश्यता अभिशाप के निवारण के निमित्त भारतीय समाज

में विशेष प्रयास हुए हैं। कवि ने इस सन्दर्भ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की आधुनिक परिभाषा देकर इस दिशा में समाजोपयोगी प्रयास किया है –

*"सो ब्राह्मण जो ब्रह्म बिचारे। सो क्षत्रिय जो कष्ट निवारे।*
*वही वैश्य जो अर्थ उपाये। शूद्र सेवता वेतन-भोगी।।*
*एक मनुज सारे वर्णों में। समय-समय जीता रहता है।*
*कर्म रूप आहुति को पावन। राम अनल पीता रहता है।।(वही, पृ० १८)*

❑ इस प्रकार एक ही रामतत्त्व की व्याप्ति सम्पूर्ण मानव जाति में दर्शाकर कवि ने राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि विश्व परिवार के संगठन का सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। कवि ने समाज में सम्मान का मानदण्ड भी वर्ण, रंग आदि के भेदभावों को न मानकर व्यक्ति में निहित सद्‌गुणों को माना है –

*"पूज्य न केवल कुल से कोई। पूज्य न केवल रूप धरे से।*
*पूज्य न केवल वयश्शास्त्र से। सद्‌गुण केवल पूजे जाते।।(वही, पृ० ३०)*

❑ पूजा का यह मानदण्ड सर्वथा लोकोपयोगी है । इसे प्रत्येक देश-काल में सहज रूप से स्वीकार किया जा सकता है। कवि ने समाज के विधायक विचारों के समान ही जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाले तत्त्वों की भी सुन्दर विवेचना इस काव्य-कृति में की है। उदारता, वीरता और विद्या मनुष्य जीवन के दिशा-निर्धारक तत्त्व हैं। बिना वीरता के जीवन प्रसून सदैव शोकातप से संतप्त रहता है अतः कवि ने वीर राम की काव्यमय प्रतिष्ठा करके वीरभाव की अनिवार्यता को सिद्ध किया है। वीरभाव ही समाज की दिशा निर्धारित करता है, वही आदर्शों की स्थापना करता है अतः उसकी व्याप्ति सार्वजनिक जीवन में अत्यावश्यक है –

*"वीर भोगते वसुन्धरा को। वीर सोहते सिंहासन पर।*
*वीर नये आदर्श थापते। निर्बल जीवन मरण कीट-सा।।(वही, पृ० २८)*

❑ वीरता का भाव उदारता की अपेक्षा करता करता है और उदारता विवेक व विद्या से आती है। इस कारण कवि अराज ने जीवन में विद्या के महत्त्व को सर्वोपरि माना है। विद्या सन्सार का प्रकाशक तत्त्व है। विद्या लोकजीवन में आदर का आधार है। वही कर्मपथ की निर्धारिका है अतः उसकी प्राप्ति

अत्यावश्यक है —

*"विद्या बिना सन्सार मे ँ सब ओर ज्यो ँ अँधकार है।*
*विद्या बिना पशु-सा मनुज पाता सदा दुत्कार है।।*
*इसलिये पहला ही चरण है जिन्दगी का सीखना।*
*विद्या मिले तो कर्म का खुलता नया सन्सार।।"(वही, पृ० २२)*

❑ वर्तमान भारत मे ँ जहाँ अविद्या का अन्धकार आज भी व्याप्त है; जहाँ स्वतन्त्रता के पाँच दशक बीत जाने पर भी निरक्षरता का अभिशाप राष्ट्रीय-फलक से दूर नहीँ हो पाया है, वहाँ डॉ० अराज की उपर्युक्त पंक्तियाँ अत्यंत सारगींभत और सर्वग्राह्य हैँ। कवि अराज ने राष्ट्रीय हित को ध्यान मेँ रखते हुए इस प्रकार के विचारोँ की प्रस्तुति की है। उनकी जाग्रत चेतना राष्ट्रीय समस्याओँ के प्रति भी सचेत है। इस काव्यकृति मेँ वे यत्र-तत्र युगीन यथार्थोँ की प्रस्तुति करते हुए भी दिखायी देते हैँ। रावण राज्य के माध्यम से उन्होँने अपने समय के समाज का यथार्थ चित्र अंकित किया है —

*"पिता नही ँ आदर्श दिखाता। पुत्र कहाँ से सीखे विद्या।*
*सद्ग्रन्थोँ का लोप हो चला। फूल रहे पापोँ के अड्डे।।"(वही, पृ० २०)*

❑ हमारी राष्ट्रीय राजनीति के सुखभोगोन्मुख स्वरूप पर भी उन्होँने अपनी चिन्ता व्यक्त की है —

*"राज भोग के लिये नही ँ है। यह तो कर्मचारिता भर है।*
*सब का हित ही सबसे पहले। यह शासन का मूल मन्त्र है।।(वही, पृ० ४२)*

❑ युग जीवन मेँ सुख-शान्ति के विकास के लिये निवृत्तिपरक जीवन-दर्शन से संयुक्त नीति वाक्योँ की भी डॉ० अराज ने इस काव्यकृति मेँ प्रभावपूर्ण योजना की है। 'श्रीरामादर्श' से इन नीति वचनोँ के कुछ उदाहरण इस प्रकार दिये जा सकते हैँ —

*(क) "सत्य और उत्साह का, हो जाये जब जोग।*
*कहाँ ठहरते तब वहाँ, अनय दुष्टता रोग।"(वही, पृ० २६)*

*(ख) "जब प्रभु सा दाता अमित, सदा हमारे पास।*
*कल की चिन्ता व्यर्थ कर, क्योँ हो आज उदास।।"(वही,पृ० ३६)*

❑ 'श्री रामादर्श' वैचारिक दृष्टि से जितनी सबल रचना है, भावात्मक दृष्टि से उतनी सशक्त नहीं हो सकी है। इतिवृत्तों के अभाव के कारण इसमें भाव सौन्दर्य प्रभावपूर्ण नहीं बन सका है। शृंगार, वीर और करुण जैसे रसस्थल भी इसमें कथासूत्र की विरलता के कारण पूर्ण परिपक्व रस दशा को नहीं पहुँच सके हैं। केवल भावरूप में ही स्थापित हो सके हैं। अपवाद रूप में ही रसों की पूर्ण परिपक्व अवस्था रूपायित हो सकी है। इस दृष्टि से सीताहरण का प्रसंग उल्लेखनीय है। कवि को श्रीराम की विरहाकुल अवस्था के चित्रण में विप्रलम्भ शृंगार के चित्रण में पूर्ण सफलता मिली है। राम की निम्नांकित उक्तियों में उन्माद व प्रलाप की विरह-दशायें देखी जा सकती है —

*"अरे पक्षियो कहो तुम्हारी। लाड़-लड़ानी कहाँ गई है।*
*मृगियो तुमसे सदा खेलती। सीता रानी कहाँ गई है।।*
*अरी लताओ अब कोमलता। तुम्हें कहा से मिल पायेगी।*
*अरे चन्द्रमा तेरी उपमा। व्यर्थ हो गयी आज यहाँ पर।।"(वही, पृ० ४८)*

❑ रामकाव्य का प्रकृत-रस शान्त है। शान्त रस की निर्विकार भाव-भूमि पर ही भक्ति का बीज अंकुरित हो सकता है। इस कारण रामकाव्य के प्रणेताओं ने सदा से शान्त रस को महत्त्व दिया है। 'श्रीरामादर्श' काव्य में भी निर्वेद जन्य शान्त रस के दर्शन सहज सुलभ है —

*"धन-यौवन सब धरे रह गये। मणियाँ महलों में ज्यों की त्यों।*
*रहा बिलखता महल नगर तक। हंस अकेला उड़ा छोड़ सब।।"(वही, पृ० ३६)*

❑ वर्णनात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से यह रचना अधिक महत्त्व की नहीं है। कवि का इस रचना के सृजन में मुख्य ध्येय राम-भक्ति का प्रतिष्ठापन रहा है; काव्यगत सौन्दर्य का सरस अंकन नहीं। इस कारण इस कृति में वर्णन सूक्ष्म रूप में ही आ सके हैं। कवि का कोमल भावुक मन तो अपने आराध्य के चरण कमलों से मुग्ध मधुकर की भाँति लिपटा हुआ है। उसे वस्तु जगत का सौन्दर्य देखने और लिखने के लिये अवकाश ही कहाँ है? तथापि इस कृति में प्रकृति का सौन्दर्य यत्र-तत्र झलकता हुआ दिखायी दे जाता है। कवि ने प्रकृति को मानवीय भावों से संयुक्त चित्रित किया है। इस रचना

में प्रकृति मानव के समान ही राम के सुख-दुख में सहभागिता करती मिलती है। चित्रकूट की वन्यभूमि राम के आगमन पर उनके स्वागत में पुलक उठती है और सीताहरण के पश्चात शोकाकुल राम को देखकर उदास हो जाती है—

*क. "रामागमन सूचना पाकर। चित्रकूट के पथ पथरीले।*
*दूब पुष्प मंडित हो पसरे। कोमल कमल पृष्ठ धरती का।।"(वही, पृ० ३८)*

*ख. "तुम बिन मै निर्बल बहुत, हल्का ज्यो आकाश।*
*खग-मृग बैठे मौन धर, तृन-तृन हुआ उदास।।" (वही, पृ० ४८)*

❑ 'श्रीरामादर्श' काव्यकृति का कलापक्ष भी अत्यन्त लालित्य पूर्ण है। भाषा-शैली अलंकार और छन्द का सौन्दर्य इस रचना मे आद्योपान्त विद्यमान है। डॉ० अराज ने अपनी इस कृति मे भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। इसकी भाषा सरल व प्रवाह पूर्ण है। कवि ने इसमें सरल भाषा का प्रयोग इस उद्दश्य से किया है कि सुशिक्षित अथवा अल्प शिक्षित सभी जन इस भक्ति-काव्य का पाठ करके आनंदित हो सकें। इस रचना का शब्द चयन सर्वत्र विविधता से पूर्ण है। डॉ० अराज ने 'जस', 'सुजस', 'चहुँ', 'भेख', 'लछमन', 'परजा', 'मूरछित' आदि तद्भव शब्दों के प्रयोग से भाषा को सरल व स्वाभाविक बनाया है। इस काव्यकृति की भाषा मे अरबी-फारसी शब्द स्त्रोतों से प्राप्त शब्दों का भी भरपूर प्रयोग हुआ है। कवि ने 'खुशबू', 'ताकत', 'रोशन', 'सिर्फ', 'खुद', 'काफिला' आदि शब्दों का सफल प्रयोग किया है। अरबी के उपसर्ग 'बे' के संयोग से हिन्दी शब्दों का सफलता पूर्वक योग करके उन्होंने 'बेथाह' जैसे शब्द प्रयोग किये हैं। कहीं-कहीं पर स्वनिर्मित शब्द प्रयोग भी देखने में आते हैं। इस दृष्टि से 'नमता', 'नमूँ', 'अम्रित', 'आतम', 'रिदय', 'रिशियों', 'सनातक' आदि शब्दो को लिया जा सकता है। मुहावरों का प्रयोग करने में भी डॉ० अराज सफल रहे हैं। 'मुँह काला होना' 'गाल बजाना' आदि मुहावरो की लाक्षणिकता देखते ही बनती है। इस काव्यकृति मे लोकोक्तियों का अभाव है और अंग्रेजी शब्द स्त्रोतों से आये हुए हिन्दी के अति प्रचलित शब्द भी इस कृति में प्रवेश नहीं पा सके हैं। इस की भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है, सरल है, सुबोध है और सहज ग्राह्य है। कवि ने क्लिष्टता और दुरूहता से यत्न पूर्वक इसकी रक्षा की है। इसी कारण इसमें लम्बे-लम्बे सन्धि-समास युक्त पद नहीं आ सके हैं। 'अभिधा' इस कृति की मुख्य

शब्द-शक्ति है।

☐ डॉ० अराज ने समीक्ष्य काव्यकृति का प्रणयन भावात्मक शैली में किया है। भक्तिभाव के स्थापन के लिये यही रूप उपयुक्त भी है। इस शैली के प्रयोग से रचना सरल बनी है और सहज ग्राह्य भी। इतिवृत्तात्मक अलंकारिक, मनोविश्लेषणात्मक आदि शैलियों के दर्शन इस काव्यकृति में नहीं होते हैं। इस रचना में कवि अराज ने दोहा, व राम छन्द का प्रयोग किया है। कुछ विशेष स्थलों पर अन्य छन्दों का प्रयोग भी देखने में आता है। अलंकारों की दृष्टि से अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, श्लेश, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का सौन्दर्य इस रचना में सर्वत्र छिटका पड़ा है। पुनरुक्ति प्रकाश का उदाहरण देखिये —

*"गली-गली घर-घर उर-उर में।*
*रमे राम हर समय दीखते।।" (वही, पृ० ३१)*

☐ उपर्युक्त अन्य अलंकार भी इस कृति में प्रभावपूर्ण रीति से प्रयुक्त हुए हैं। स्थानाभाव के कारण उनकी प्रस्तुति सम्भव नहीं है। निष्कर्ष रूप में इस रचना के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि खड़ी बोली रामकाव्य माला की एक दिव्यालोक-प्रद मणि के रूप में इसकी सृष्टि हुई है। यह कवि के भक्त हृदय का परिचय देने और सहृदय सामाजिकों के संस्कारित हृदयों को रामभक्ति के पथ पर प्रेरित करने में सर्वथा समर्थ है।

सम्पर्क :
हिन्दी विभागाध्यक्ष, शास० कुसुम महा विद्यालय,
सिवनी मालवा, होशंगाबाद, म० प्र०-४६१२२

## ५. 'श्री रामादर्श' (काव्य) की प्रतिबिम्बित भाव-छवि!

— डॉ० शिवशंकर शर्मा 'राकेश'

❑ परम रम्य राम-राग में रमे डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' कृत काव्य में कवि के मनोरम भक्ति-भावों की अनेक झाँकियाँ श्री राम के अनाविल आदर्श में प्रतिबिम्बित हैं। प्रायः 'रामचरितमानस' के सदृश भावोद्रेक प्रस्तुत काव्य में अंशतः उच्छलित है। पाँच प्रकृष्ट भाव-छवियाँ आकलित हैं इसमें। अतः यह लघु काव्य अक्षय राम-रसमय मधुपर्क है। वे रसीली छवियाँ हैं श्रीराम की लीला ललित बाल-छवि; अमित तेजोमयी युवा छवि; निष्काम कर्मठ निरंजन तपस्वी राम की छवि; कंदर्प-दर्प-दलनकारी नील तामरस श्याम विश्व-प्रेमी राम की छवि; भव-भीति-हर रणकर्कश रघुवीर राजेन्द्र राम की छवि। इसके अतिरिक्त अनन्त ओजपुञ्ज रामात्मज लव-कुश भी इस काव्य में प्रतिष्ठित हैं, वे आदर्श श्री राम के शक्ति-शील-सौन्दर्य के समंजित अप्रतिम उद्भास हैं।

❑ श्री राम की अमेय महिमा डॉ० अराज द्वारा उपरि-उल्लिखत छवियों में हृदयंगम करणीय है। सर्वसिद्धिकर 'श्रीरामादर्श' काव्य का भक्तिपूर्वक पाठ ही श्रेयस्कर है। तात्विक विवेचन के आधार पर जगनायक श्रीराम, जगज्जननी जानकी तथा शिव-तरंग आंजनेय वस्तुतः एक ही अमित अविभाज्य शक्ति के तीन विशिष्ट रूप हैं। हमारे समस्त शिव संकल्पों के सतत शक्ति-स्रोत हैं ये।

❑ श्री राम का ब्रह्माण्ड-व्यापी वर्चस्व प्रस्तुत काव्य के राम छन्दों में सश्रद्ध परिचर्चित है, भक्ति भावापन्न दोहो मे संकीर्तित है। यह सत्काव्यकारी कलात्मकता से आडम्बरित नहीं है। तुकांत न होकर राम-राग की अटूट टेक पर ही आद्योपान्त टिका है। इसमें शब्द की लय उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी कि विशुद्ध राम-भक्ति की भाव-लय। श्री अराज का और राम-राग का अविनाभाव सम्बन्ध है। अलंकारों की चमत्कारी चमक इस काव्य में विरल है। भाषा की सज्जा सहज है क्योंकि 'का भाषा का संस्कृत भाव चाहिये साँच।' आदि-महाकवि से लेकर परवर्ती राम-रागियों की लीक पकड़ कर डॉ० अराज ने श्री रामादर्श को प्रतिबिम्बित किया है। काव्यारम्भ में रामचरितपूत भारतभूमि, मानवता का महत्त्व तथा सम्मान्य विभूतियों का स्मरण है। इस काव्य का मूल स्वर राम-भक्ति-प्रेरक जग-कल्याण है, कलात्मक कारीगरी नहीं। (देखिए पृष्ठ १८) लेखक को समाज का राम-भक्ति-साध्य मर्यादित उत्कर्ष अभीष्ट है, यही थी राम-प्रतिज्ञा (पृष्ठ १६)। विनीत लेखक की प्रार्थना है कि हंस-सरीखी ज्ञानवृत्ति

के अयोध्या-उर-स्पंदन कौसल्यासुत, धर्मविग्रह, शस्त्रसाज-सज्जित श्री राम उसके सदा हृदयवासी रहें। लोकमोहक अवधेशकुमार की ऐसी अद्भुत छवि थी।

❑ युवा राम स्वयं शिव संकल्प हैं, निराकार शिव कर्म हैं। सीता-राम सचमुच पूज्य प्रेमादर्श हैं, यज्ञरूप प्रकृति-पुरुष का अभिन्न संयोग हैं। जन-सुख-सुविधा -धाम राम भगवान, भरत न्यायरत, लखनलाल लोक-रक्षा-व्रती, तथा तत्कालीन लोक-शिक्षा प्रचारक थे कुमार शत्रुदमन। ऐसी थी नीति-निष्णात युवा श्री राम की आदर्श राज्य-व्यवस्था —

"कर्म-उष्णता थी भली, रहे सभी मन झूल,
अमलतास के वृक्ष पर, जैसे ढेरों फूल।।"(वही, पृ० ३२)

❑ रामभक्त डॉ० अराज ने 'श्रीरामादर्श' में तीसरी छवि तपस्वी रामचन्द्र जी की चित्रित की है। तपःपूत अभिराम राम पूर्ण निष्काम कर्मरत रहे। दुष्टाशय कैकेयी की कुमंत्रणा से विवासित परम शील सम्पन्न श्रीराम ने उस विपत्ति को आत्म-कल्याण एवं वन-सुलभ-संत-समागम का सुअवसर माना। वनचारी राम-सीता-लक्ष्मण के दर्शनार्थ अतुलित बलशाली हनुमान का प्रकट होना लेखक का राम-भक्ति-साधना को पुनः रेखांकित करना है (पृष्ठ ३६)। चित्रकूट के पथरीले पथ रामागमन से पुलकित दूब-पुष्प-मुंडित होने लगे। उधर प्राणाधार पुत्र राम में अश्रुगलित दशरथ की अटकी हुई प्राण-रज्जु अन्ततः टूट ही गई। कैकेयी के कुकृत्य से अत्यन्त परिपीड़ित निष्कलंक भरत राम-भाव में निमग्न होकर चित्रकूट सपरिकर पहुँच कर राम-चरण में जा गिरे। निरंतर अनुनय-विनय करने पर भी उन्हें श्री राम के सुदृढ़ संकल्प का कोई विकल्प नहीं मिला, क्योंकि —

"धन्य धन्य ये भरत हैं, जिन्हें नहीं कुछ लोभ।
धन्य धन्य ये राम हैं, जिन्हें नहीं कुछ क्षोभ।।"(वही, पृ०४२)

❑ अतः राम-भावमय भरत और भरत-भावमय राम का तपस्यादर्श सर्वदा सर्वथा सुचर्चित रहेगा!

❑ 'श्रीरामदर्श' की चतुर्थ चिरमांगलिक छवि प्रेमी महामानव महात्मा राम की है। चित्रकूट के भक्ति-ज्ञान-नीति निरत प्रसंग के उपरान्त वनवासी श्रीराम-कथा

के अन्तर्गत राम-भक्ति-प्रेम से सुरंजित अत्रि-अनसूया, शरभंग और सुतीक्ष्ण के क्षणिक प्रसंग लेखक को अत्यन्त आह्लादकर हैं। पंचवटी-प्रकरण का आमुख 'श्री रामादर्श' में मानव-प्रेम को उजागर करता है, यथा —

*"नहीं बचेगा मानव-द्रोही, राम हृदय में निश्चय करके।*
*विदा माँग शरभंग मुनी से, बढ़े पथी श्री-अनुज साथ ले।।" (वही, पृ० ४४)*

❑ विश्व-कल्याण का ज्योतित प्रण प्रस्तुत राम-सुछवि का ज्योतिचक्र है कि—

*"शीश जटा, धनु-बाम कर, लिये दाहिने बान।*
*राम-पथी उर में बसें, करें विश्व-कल्यान।।" (वही)।*

❑ जटायु-उद्धार श्रीराम-प्रेम का अद्‌भुत उदाहरणीय प्रसंग है। वीरवर संयमी लक्ष्मण द्वारा दण्डित राक्षसी शूर्पनखा बिना नाक-कान की हो गई। यहाँ कवि ने सटीक नैतिक न्याय का संकेत दिया है—

*"खोलें द्वारे नरक के, काम-क्रोध-अभिमान।"(वही, पृ० ४६)।*

❑ माया-मृग के लिये जब मायापति ही दौड़ने लगे तभी दुष्टाशय लंकेश ने छल बल से सीता-हरण कर लिया। सीता-शोक-मग्न विलाप करते श्रीराम के प्रति अनुज सौमित्रि की यह उक्ति बड़ी सारगर्मित थी—

*"भैया सँभलो, रविकुल-दीपक, यों रोये उपहास बनेगा।*
*ऐसे समय गँवाने से तो, शत्रु और दृढ़ हो जायेगा।।" (पृष्ठ४८)*

❑ यहाँ 'रविकुल' और 'दीपक' राम के ही विशेषण असंगत लगते हैं। तभी धनुर्धारी श्रीराम ने शक्तिस्वरूपा सीता की शपथ लेकर प्रतिज्ञा की पापात्मा रावण को दण्डित करने की। प्रेमाधार प्रेमी राम का असीम प्रेम मानवेतर जड़ जीवों तक एक रूप-रस था। अनपायिनी पावनी-भक्ति-विभूतिमयी निरक्षर शबरी ने श्री राम को चखे-चुने बेर अर्पित कर, आत्म-हेम प्राप्त कर जग-धूलि तज दी। शबरी ने परम कृपालु प्रभु से सविनय प्रार्थना की कि उस वन्य प्रदेश को राक्षसी संकटों से मुक्त करें (पृ०५०)। कैटभ का हृदय-परिवर्तन और उसके राम-राग-रत होकर प्राण-परित्याग का कथा-प्रसंग भी राम-भक्ति का प्रेरक है। 'श्रीरामादर्श' की प्रस्तुत छवि का सश्रद्ध समापन राम-भक्तों के पुण्य स्मरण से ही हुआ है।

❑ 'श्रीरामादर्श' काव्य की पंचम प्रकृष्ट प्रांजल छवि में अनन्त ओजस्वी वीर वरेण्य राम के मित्र-आरतिहर-विरुद का प्रथित प्रतिमान प्रतिम्बित है। सीता की खोज में प्रस्थान करते वीर शिरोमणि सर्वगुण सम्पन्न हनुमान को जटायु के अग्रज सम्पाति ने जो नैतिक सत्परामर्श दिया वह मानव-सेवा-धर्म का सत्प्रेरक है कि—

❑ *"सचमुच वृद्धजनों की सेवा, अनजाने बन जाती मेवा।"*(पृ०५४) श्रीरामचन्द्र को संतप्त, अतिखिन्न जग जीव ही स्वभावतः अति प्रिय थे। अतः लंका जाते समय हनुमान जी को उन्होंने यह निर्देश दिया कि वे वहाँ सत्यपक्षधर दुःखी भक्त विभीषण से अवश्य मिलें (वही)।

❑ अशोक वनिका-प्रसंग में रावण के प्रति मन्दोदरी के सुभाषित परामर्श में सन्नारी के मूल सद्गुण ध्वनित हैं कि वह दया-ममता की ज्वलंत प्रतीक है—

*"क्यों कर रक्खी कैद मराली, नाथ उसे स्वच्छन्द छोड़ दें।।"*

*(वही, पृ०५५)*

❑ विश्व को रुलाने वाले निर्दय, निरंकुश अभिमानी रावण का आशुतर विनाश हो जाता है।

❑ धीरोदात्त श्री राम ने यह चरितार्थ किया कि "जीतेगा जो टिका सत्य पर" (पृ०५६)। लंकावृत्त का समापन होते-होते श्रीरामादर्श के चिरचर्चित चारु चरित डॉ० अराज ने पूर्ण आस्था-भक्ति पूर्वक रेखांकित किए हैं।

❑ श्री राम की लंका-विजय के पश्चात् अयोध्या लौटने पर जन-जन का अपूर्व हृदयोल्लास अगणित दीपमालाओं में उजागर हुआ। काव्य के अन्त में धर्म-कर्म के सदृश रूपायित रामात्मज लव-कुश के लोक-रञ्जक चरित की लोक-सन्त-मत-सम्मत राजतन्त्र द्वारा प्रतिष्ठा की गई है, जो कि 'श्रीरामादर्श' काव्य का अक्षर अक्षर-विराम है। राम-भावमय डॉ० अराज की प्रस्तुत काव्य कृतिसहज राम-प्रेम-भक्ति की नित्य निरूपिका है। इसका चरम लक्ष्य भावानुभूतिगम्य लोक-कल्याणसिद्ध जप-पाठ-साध्य है, सामान्यतः आलोच्य नहीं है यह!

११.१०.६७

सम्पर्क :
कविता, भारती नगर, मैरिस रोड़,
अलीगढ़-२०२००१

# ६: "अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग"

— डॉ० प्रसाद "निष्काम"

❑ इससे पूर्व कि "अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग" उक्ति को सार्थक करने वाली अराज-दोहावली में सर्वांग डुबकी लगाई जाए, इस 'रस-सागर' -से सरस सरोवर के निर्माता 'अराज' अर्थात् 'अचल राजपूत' यानी ओम्प्रकाश भाटिया को पहचान लेना जल-प्रवेश-पूर्व आचमन सदृश होगा।

❑ कवि 'अचल राजपूत' का जातिगत अहं तो कभी परिपक्व कालान्तर साधनाओं में भटियाई (भट अर्थात् वीर क्षत्रिय होने का) गुमान 'अराज' (राजपूती शान-बान से विरत)-समत्व- शोध मेँ व्यक्तिरूप से कायाकल्पित होकर अपनी अब तक की बहु-आयामी और बहु-भाषी गद्य-पद्य काव्य-सुकृतियों के इन्द्रधनुषी सृजन-संसार मेँ मेरे विचार से मात्र सहृदय और उदार 'ओम्प्रकाश' की ज्योतिर्मयी पारदर्शी आभा से देदीप्यमान है — अन्ततः राम-रस-लीन अर्थात् निपट राम से काम । यह स्थिति प्राप्त करने के लिए उसे काव्य के विविध रूपों की ही नहीं कहानी, उपन्यास इत्यादि की भी अनेक पगडंडियों और सड़कों को नापना पड़ा है।

❑ इस द्वन्द्वात्मक भाव-जगत मेँ डॉ.ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' जितने सरस हैँ, उतने ही नीरस और कठोर हैँ शब्दाक्षरों के भाषाई एवं लैपिविज्ञानिक शोध-प्रतिशोध मे"। 'ओम्' इत्यक्षर (ॐ) के हलन्त म (म्) को 'प्रकाश' में" आत्मसात करने वाले 'ओम्प्रकाश' की सरसता उनकी अपनी किन्तु सतर्कता भाषाविज्ञानी तथा लिपि-विज्ञानी की है । उनकी पाण्डुलिपियों और पुस्तकों का अन्तःसक्ष्य उनकी इस मान्यता को स्पष्ट करता है कि देवनागरी लिपि के अनुस्वार (ं) में" ङ्, ञ्, ण्, न्, म् का उच्चारण निहित है। उनकी पुस्तकों मे ं 'मे ं', मै ं, कही ं' आदि को चन्द्र-बिन्दु से 'मे", मै", कही"' आदि लिखा गया है । 'नागरी लिपि का उद्भव और विकास' (पी-एच०डी०) पर अन्यतम शोधप्रबन्ध और 'अरा लिपि' के रूप में" विश्व की अनेक भाषाओं के लिए वैज्ञानिक समान लिपि प्रस्तुत करनेवाले इस विद्वान् के इस अनुस्वार एवं अनुनासिक के शुद्ध प्रयोग को विचारा जाना चाहिए।

❑ लगभग पचास पुस्तकों का और विविध विधाओं का हिन्दी, पंजाबी, उर्दू में" रचित अराज-साहित्य है। उसके अवगाहन में" 'अनबूड़े' बूड़ (डूब) जाएँ,

और जो 'बूड़े (डूबे) सब अंग' वे पार पा जाएँ, तो क्या आश्चर्य? बस यूँ समझिए—

*जिसको जितना मिला, वही उतना ले भागा।*
*गहराई मे ँ उतर गया, 'निष्काम' अभागा।। (निष्काम)*

❑ 'अराज' के गद्य मेँ एक ओर शोध-प्रबन्ध, निबन्ध, आलोचना-समीक्षा इत्यादि तर्क का बल लिये हैँ, वहाँ दूसरी ओर उसमेँ उपन्यास, कहानी, लघुकथा और ललित लेखन का रस-प्रवाह भी है। 'अराज' के पद्य मेँ महाकाव्य, 'श्रीराम कथा', काव्य 'श्रीरामादर्श' और 'सत्यज' हैँ तो ढेरोँ प्रगीत, नवगीत, भजन, प्रार्थनाएँ, प्रयाण-गीत (मार्चिँग सौँग), दोहे हैँ, अराज-दोहावली है। अराजकृत कविता के 'हँसते-रोते आँसू' 'धर्मा' जैसे ग्रन्थ गद्य मेँ जो लय प्रस्तुत करते हैँ वह कहीँ सहज कविता, कहीँ समुद्र-मन्थन तो कहीँ बद्धिमन्थन करता है। उसे गद्य या पद्य के द्वारा वर्गीकृत नहीँ किया जा सकता।

❑ यद्यपि अराज-साहित्य मेँ अनेक ग्रन्थ विस्तृत अवगाहन के योग्य हैँ, किन्तु मैँ कविता तट पर खड़ा हूँ और उसमेँ से भी अराज-दोहावली घाट पर। अतः इस रस-सर के इस घाट से रसपान करता हूँ।

## अराज दोहावली : बहुमुखी मूल्यांकन

❑ 'श्री राम-जप' दोहात्मक १०८ मनका-माल की सुमिरनी का स्रोत जिस 'अराज-दोहावली के ५०४ लौकिक एवं अलौकिक दोहोँ से मथित और परिमार्जित है, उसमेँ अराज की कतिपय आत्म-स्वीकृतियाँ विचारगत हैँ। यह उनकी पाँचवीँ पाण्डुलिपि के आधार पर प्रथमतया सन् १९९२ मेँ मुद्रित है। इसमेँ उनके वर्ष १९६३ से ९२ तक सृजित बहुमुखी दोहे बहुआयामी लौकिक धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष से अभिप्रेत हैँ। (इसके पश्चात् पां० सं ६ तथा मुद्रित संस्करण ७, मुद्रण-१, १९९७ ई० प्रकाशित हो चुका है। उसमेँ ७०२ दोहे हैँ। यह लेख ५०४ दोहोँ वाले संस्करण-५ पर आधारित है। सुधी पाठक दोहा क्रमांक 'अराज-दोहावली' सं० ५ के आधार पर ही समझेँ। - अराज)

❑ 'श्री राम-जप' सुमिरनी मेँ ओम्-अराज से भी अछूता और अछाप जाप है, जबकि 'अराज दोहावली' मेँ उनके ओम् प्रकाश, अचल, अराज इत्यादि नामोँ की छाप वाले दोहे (सं० ३४, ५३, ६८, १७६, १८१, २०८, २३६, २४६, २७३, ३०३, २५२, ३७५, ४०३, ४०६, ४७६, आदि द्रष्टव्य) लोक-लिप्सा के प्रमाण

हैं। सतसईकार रीतिकालीन रसिक बिहारी की भाँति उनका भी लोक-काम लौकिक जनों की तरह उलटी माला फेरते-फेरते फिर-फिर रामधुन में सजग सचेत हो जाता है । लोक-लिप्सा-रति-रंग का समाहार-परिहार भी उन्हीं के दोहों में पूर्ण परिपक्व दृष्टिगत है, यथा —

*करनेवाला और है, तू लिखकर निज नाम।*
*पाप-पुण्य क्यों भोगता, सुख दुख का परिणाम।।६५।।*

❑ 'कामी, क्रोधी, लालची, पापी रहा अराज।' (७८) की- निष्कपट आत्म-स्वीकृति का मिलान 'सूर' की यथोक्त आत्म-स्वीकृति से कम नहीं है—

*"मो सम कौन कुटिल खल कामी?*
*जे तन दिए ताहि बिसरायो, ऐसो नोन हरामी।"*

❑ निस्संदेह ऐसी निष्कपट आत्म-स्वीकृतियाँ भी काम-वासनाग्रस्त रति-रंग को भी दुग्ध-धवल करने में नहीं चूकतीं। 'अराज दोहावली' का मधुर शृंगार भरा रति-रंग काम-बाण लोक-मानस का पीछा भले ही न छोड़े, लेकिन अराज ने ऐसी उबाऊ-डुबाऊ वैतरणी के आर-पार जिस राम-बाण का सन्धान किया है, उसका मन्तव्य भी माननीय है —

*कामिनि कोमल कमल सी, प्राप्ति कामना-कीच।*
*सुखद देखना दूर से, फँसो न दल दल बीच।।८६।।*

क्या समझे, है न 'Beauty is to see not to touch' (ब्युटी इज़ टु सी, नॉट टु टच) का रसात्मक एवं समलंकृत दोहानुवाद वह भी वृत्त्यानुप्रास एवं छेकानुप्रास की शब्दालंकृतियों में 'कामिनि कोमल कमल सी, प्राप्ति-कामना कीच' में निहित उपमा और रूपक-द्युति से मंडित । ऐसी अनेक अलंकृतियों की चकाचौंध घन-विद्युत की भाँति 'अराज-दोहावली' में इसलिए भी ध्यातव्य हैं कि काम मोहिनी के मोह से नारद को बचना और बचाना भी है। कहीं ऐसा न हो कि तथाकथित काम-जयी नारद की भाँति-*जेहि बिधि होइ नाथ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा ।*"की रट लगाते फिरें। क्या करें, यह काम-माया अनेक नायिका भेद-भंगिमाओं सहित अपनी रति-रंग लपेट में ले लेती हैं। राम जी भली करें, तो बचिए-बचाइए।

## काम-बाण बनाम राम-बाण

❑ शिव जी ने जिस मायावी कामदेव को अपनी तपाग्नि से भस्मीभूत किया, उसी की सहचरी रति-नारी की प्रार्थना से रीझ कर उन्हीं शिव जी ने उसे अनंग एवं सक्रिय भी कर दिया, तो क्यों? मधुरा नारी होती ही ऐसी मोहिनी है। विधि ब्रह्म रचित काम-लीला में नारी भूमिका सर्वोपरि और निर्विवाद है; क्योंकि —

*विधि की सभी पहेलियों, मानव सका न हार।*
*तब सरला सम्मोहिनी, रखी सामने नार।।४३।।*

❑ तो फिर काम सहचरी सम्मोहिनी रति की प्रार्थना पर कामजयी शिव भी कैसे न पसीजते; अतः —

*रुद्र न हारा विश्वजित, कामदेव के भेख।*
*पर वह विचलित हो गया, रति के आँसू देख।।४१२।।*

❑ दोहाकार अराज तो अपनी परिपक्वावस्था में साक्षी और द्रष्टा मात्र है, अतः उसकी सर्जना भी अर्थ-गौरव गर्भित है। कारण —

*भाव कला मंडित दुहित, दोहे रस के नीर।*
*छिछलेयों कुछ पाद भर, अर्थ जलधि गम्भीर।।३२०।।*

❑ अर्थ जलधि का रूपक ही ऐसा है कि न केवल 'घाव करे गम्भीर' अपितु "अनबूड़े बूड़े' तथा' तरे जो बूड़े सब अंग।"के आर-पार का संकेतक भी है, अतएव —

*भाषा के बन्धन रहे, मूक मार के खेत।*
*बिन बोले सब कह गए, नयनों के संकेत।३२१।।*

❑ इनका हास्य, रति-रंग, मिलन एवं विप्रलंभ तो देखते ही बनता है।

*यौवन ने आते किया, सीधे पन पर वार।*
*नयन लगे झुकने सखी, कुच नितम्ब के भार।।३५८।।*

*मैके में प्रिय आगमन, नयन मीन पय पास।*
*लाज कूल सिक्ता पड़ी, तड़पे हुई उदास।।३५१।।*

*पुत्री जाती भर्तृगृह, आँसू पूरे नैन।*

*सुख-दुख मे ँ उलझे हुए, गले अटकते बैन।।२७०।।*

*अनियारे दीरघ नयन, गए ह्रदय को बे ँध।*
*नैनो ँ की दीवार से, लगी ह्रदय को से ँध।।७।।*

❑ उक्त दोहे के दोनो ँ तुकान्तो ँ से पूर्व ह्रदय को' सेँध से पाटा जा सकता था। कारण, नैनो ँ की दीवार से सुकोमल सेँघ लगते ह्रदय मे ँ कितनी देर लगती है? क्या करे ँ डॉ० 'अराज' जब भौ ँहे ँ भी कमान हो ँ। कोई अपनी आँखे ँ मूँद भी ले, तो यह चमक चन्द्रमा कब चूकने वाला है –

*एक शाम छत पर चढ़ी, चल गई भौ ँह कमान।*
*तब से चन्दा को पड़ी, नित आने की बान।।५५।।*

❑ उपर्युक्त दोहे मे ँ 'चल गइ' व्रज शैली मे ँ छपा होता, तो 'चल गई' का मात्रधिक्य दोष शृंगार परक अतिशयोक्ति के चारू चाँद मे ँ न दीखता। सोचिए तो, किसी एक नायिका की भौ ँह कमान चल जाने से चन्द्रमा रातोदिन 'नित' दिखाई दे तो क्या बात है ? सारी रात चमकने वाले सूर्य की भाँति यह दूसरा भौगोलिक सत्य अतिशयोक्ति मे ँ घटित है।

❑ कवि का समय को बाँध लेने वाला चितेरा मन प्रकृति मे ँ भी नाना प्रकार के शृंगारिक कार्यकलापो ँ मे ँ मानवीकरण की अलंकृति करता है, यथा –

*बाल सुखाती है प्रकृति, तेरे ही अनुरूप।*
*चीर ह्रदय जाती प्रिये, यह हेमन्ती धूप।।३०१।।*

❑ सुरति-रति तो भक्त और भगवान के बीच कच्चे धागो ँ मे ँ बँधी रहती है, तो संसारी जनो ँ मे ँ भी रति-राग-रंग संयोग-वियोग और हास - विलास की मोहिनी क्यो ँ न प्रसारित दिखे। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य है ँ –

अधर हलाहल बिन पिए, नही ँ मिटेगी प्यास।
*बिना धतूरे आक से, ज्यो ँ शिव रहे ँ उदास।।५।।*

*अश्रु गाल से फिसल झट, होते कुंचुकि लीन।*
*ह्रदय-दहन के शमन को, वारि उलीचे मीन।।२४।।*

*आशा जोबन जिन्दगी, इनकी प्यासी प्यास।*
*बुझती प्राणो ँ को मिले, काया से निर्वास।।३२।।*

इतने बल अबला बनी, एक न छोड़ा शूर।
नैन मार घायल हुए, तलुए चाटे ँ कूर।।३३।।

कमल नयन श्री राधिका, काजल डाले पीर।
किन्तु सुखद् होकर बसे, कमल नयन बे पीर।।६२।।

कविता मे ँ अभिससारिका, करने लगी विभोर।
तभी धर्म पत्नी लगी ँ, आकर करने शोर।।७५।।

काम दूतिका सी हुई, यह अगहन की शीत।
चिपट-लिपट सोती प्रिया, ऊन चुभन से भीत।।८४।।

कार दिखाती क्या भला, इस्कूटर सा रंग।
भुज लिपटाए बैठती, अब सटकर वह संग।।६०।।

कुटिल किशमिशी कामिनी, कुटिल कनखिया वार।
कुटिल न होता क्यों ँ सखे, अपनी नार बिसार।।६६।।

खोई रहती मै ँ सखी, मन-भावन संकेत।
जली दाल की गन्ध जो, नहीं ँ लिवाती चेत।।१०७।।

गए अठारह फागुनो ँ, खिला न ऐसा रंग।
एक रात बरसा गया, जैसा रंग अनंग।।१०६।।

भागा सिर पर पाँव रख, हनीमून का ख्याल।
देख खून पोते अधर, नख लम्बे विकराल।।३१६।।

सीट न छोड़ो नित नही ँ, दिखे दृश्य अभिराम।
रहने दो युवती खड़ी, बस छत छड़ को थाम।।४७३।।

❑ नए नवीन शब्द-शिल्पो ँ (अंग्रेजी सहित) और उपमा-उपमानो ँ में ँ काम-झड़ी की बानगी के तौर पर इन ऐसी अनेक फुलझड़ियो ँ में ँ अराज की झटकामार नेक नियति भी देखिए —

साहस उसका एक था, छेड़ा बीच बाज़ार।
नाच नचाया ताल दे, चप्पल की चटकार।।४६५।।

सिग्रिट सी वारांगना, कर बैठे पहचान।
अंग लगा स्वाहा किया, धन-तन जीवन प्रान।।४६८।।

रूप शील गुणहीन मुख, सजे नहीं शृंगार।
कालापन ढकता नहीं, पाउडर के अति भार।।४१७।।

रुक्ष-वृक्ष सी कामिनी, हल्की कर दे जेब।
ले चल साड़ी एक तब, देख दमकते सेब।।४११।।

खोले द्वारे नरक के, काम-क्रोध-अभिमान।
सूपनखा होकर चली, बिना नाक बिन कान।।१०८।।

❑ अस्तु, काम-क्रोध और अभिमान की ऐसी व्यंग्यात्मक हास्योक्ति और दुर्गति से बचाने वाली 'अराज दोहावली' की पहली टेक की सुमिरिनी पर ध्यान दे—

अँकवारा श्री राम ने, तेज धन्य हनुमान।
मन को दीपित कर गया, प्रभु का नेह महान।।१।।

❑ इस तारतम्य में राम-रसलीन अराज की कोई हठधर्मी अथवा पूर्वाग्रह आड़े नहीं आते, अर्थात् हमारे वैद्याचार्य को सत्य की कड़वी-कसैली औषध, चाहे 'नूर इलाही' ही क्यों न दें, *स्वीकार है। कारण —

अपनी-अपनी कल्पना, अपने अपने पाँख।
साँच झूठ पहचानिए, अपनी अपनी आँख।।१०।।

हिन्दु-बुद्ध-मुस्लिम हुआ, या ईसा का भक्त।
किन्तु बदल पाया नहीं, मानव अपना रक्त।।(वही, दो० ४६६।।

❑ निर्विवाद रूपेण, मानवीय रक्त-रंग एक है परन्तु वह सत्यनिष्ठ और आत्मनिष्ठ न होकर कलिकालीन भस्मासुर है —

कलियुगी-दोहे,

कल जुग के कूकर हुए, अर्थ तन्त्र के दास।
पट पुराण पहने पथिक, करें भौंक उपहास।।६६।।

❑ हास्यास्पद कलियुगी रूपक यह भी तो है —

कलियुग में अब ले रहे, पुरुष नारि अवतार।
मूँछ मुड़ाई देख निज, मूँछों वाली नार।।७३।।

*(मैंने 'नूर इलाही' (अर्थात् 'ओम्प्रकाश') नाम से भी लिखा है। शायद डॉ० निष्काम उसी ओर संकेत कर रहे हैं। - अराज)

❑ दुर्योग से मूँछोवाली मुच्छाड़ियल औरत किसी निर्मुच्छ को घास क्यों डालेगी? सभी नर-नारी हैं। कोढ़ में खाज यह भी —

*कलजुग है अब आजयुग, धर्म बना है काम।*
*दाँत दक्षिणा पर गड़े, जीभ लपेटे राम।।७१।।*

❑ सीधे-साधे 'मुँह में राम बगल में छुरी' जैसा मुहावरा दुष्टिगत है। 'कलजुग है अब' के साथ 'आजयुग' की निरर्थक पुनरावृत्ति भाषा विद की कमल से टल गई होती, यदि कोई पाँच मात्रिक सार्थक शब्द नोक पर आ गया होता, यथा-कलहयुग । या फिर प्रेस-प्रेतों की कृपा से 'खाजयुग' ही छप गया होता। फ़िलहाल तो कलजुगी त्यौरियों से बचिए—

*कलजुग में आँखें बनीं, तीखे तीर कराल।*
*विद्वानों ने सोचकर, गढ़ दी ऐनक ढाल।।७०।।*

❑ ऐनक ढाल चश्मा। सन्तमन 'अराज' के रूपक का चश्मा भी स्पष्ट है -

*कलिपावक को राम की, कथा वारि की धार।*
*जहाँ सन्त तरुवर जुटें, बरसे सुधा अपार।।७२।।*

❑ यह राम-नामी कवच, काव्य-शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमतां, की उक्ति का भी साधक-आराधक है। यूँ कि —

*कर्म चले निष्कर्म ही, ज्यों अभिनय का खेल।*
*तब 'अराज' हो जीवन का, परम ब्रह्म से मेल।।६८।।*

❑ 'परम ब्रह्म से मेल' हो इससे पहले की अर्द्धाली में चौदह कलजुगी कीलें जड़ी हैं।

❑ अतः अपना सदाशय यही है —

हो 'अराज' जीवन्त का, परम ब्रह्म से मेल।।

(प्रेस की कृपा से संस्करण-५ में 'जीवन' छपा । अतः चौदह मात्राएँ दिखीं। विद्वान् समीक्षक का संकेत उसी ओर है। वास्तव में वहाँ 'जीव' शब्द है। संस्करण ६ और संस्करण-७ दोहा-१०१ में शुद्ध छपा है। -अराज)

## देश-परिवेश : भ्रष्टाचार

अपनी-अपनी सीट पर, कोई करे न कार।
देश-रोग कैसे मिटे, जब हर अंग विकार।।११।।

अपने-अपने स्वार्थ हित, गोल बाँधते लोग।
करें रस्पर मांस का, पशुवत ज्यों उपभोग।।१२।।

अपयश मार मरें बड़े, छोटे भय की मार।
पर निर्लज्ज मरे ह्रदय, अमर रहें सन्सार।।१५।।

उठा महल कलधौत का, झोपड़ियों के बीच।
स्वर्ग उगाया चमकता, रक्त अनेकों सीच।।४१।।

कायर बीजू भौंकते, मुर्दों ही के गाँव।
मर्द दिखाई दे खड़ा, भागें सिर धर पाँव।।८८।।

किया सदा सुख संकलन, छिपी चली सँग खोट।
पिटने को बढ़ती रही, हर शतरंजी गोट।।६२।।

गद्दी चढ़कर लूटते, नेता की क्या खोट।
नक़द दाम देकर लिए, उसने सारे वोट।।१११।।

झूठ कपट सीखे नहीं, जेब न एक छदाम।
क्या नेता बन पाएगा, कर गाँधी से काम।।१७३।।

थोड़े दिन कविता लिखी, निकले प्रतिभावान।
फिर जा खोली चौक में, सब्ज़ी की दूकान।।१८६।।

दल फूटे स्वारथ उगे, बढ़ा बनैला ढंग।
नेता ने रक्षार्थ ली, ढाल-गिरगिटी रंग।।१८६।।

धन का लोभी सर्प-सा, कूकर मोहे चाम।
सबके तलुवे चाटता, चाहे जग में नाम।।२०६।।

धर्म अर्थ या काम से, कैसे चाहे मोख।
लहू चाम की देह से, कैसे छूटे दोख।।२०६।।

धर्म न्याय की छाँह में, बसो सुखी लंकेश।
हमें सिर्फ़ इच्छित रहे, अपना प्यारा देश।।२।।

❑ यह आत्मनिष्ठा संकल्प भी तभी सार्थक हो सकता है, जब हमारे राष्ट्रजन गहरे मन से न केवल आत्मनिरीक्षण करें, बल्कि भस्मासुर बने अपने ही बीच के अगुवाओं को घास न डालें, क्योंकि —

*नृपति प्रजा कन्धो धरे, सिंहासन आरूढ़।*
*प्रजा रुठाए मूल निज, काटे पादप मूढ़।।२३६।।*

*नेता ने तारा जगत, बातो के विस्तार।*
*बिन चोरी कर से किया, माया का उद्धार।।२४०।।*

*पिछलगुओं के लाभ को, लिए विभेदक नीति।*
*पुच्छल तारों से उगे, नेता फैली भीति।।२६३।।*

❑ ऐसे विभ्रष्ट आपराधिक देश-परिवेश की उत्तरदायी हमारे जन-गण-मन की इकाइयाँ भी कम नहीं हैं, क्योंकि —

*रख डाला हमने स्वयं कायरता सिर ताज।*
*तब रक्षित कैसे रहे, देश वधू की लाज।।३६०।।*

## सैद्धान्तिक संघर्षपरक जीवन-मूल्य

❑ जिस प्रकार 'धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे' अर्जुन क्षत्रियत्व को महर्षि वेद व्यास योगेश्वर कृष्ण के श्रीमुख से उद्‌बोधित करते हैं, उसी प्रकार 'अराज' भट (क्षत्रियवीर) भी राम-रस-लीन पुरुषार्थ को सशस्त्र उत्प्रेरित करते हैं, यथा —

*अनय दिखे तो युद्ध कर, कर्म धर्म का योग।*
*देव दे रहे अस्त्र कर, कर उनका उपयोग।।६।।*

❑ एतदर्थ वह स्वयं को भी तत्पर करते हैं —

*अरे, ओम! जग-मोह का, दर्पण-दर्शन त्याग।*
*निर्गुण हो नीरूप हो, सच्चेतन हो जाग।।१६।।*

*इस सुन्दर माँ भूमि को, शत-शत करूँ प्रणाम।*
*शुद्ध अन्त जल प्रेम दे, दे सब विधि आराम।।३७।।*

❑ 'बहुत सिधाइबु से बड़ दोष' न हो, इसलिए —

*इस जग में बनकर रहो, कुछ कड़वे कुछ नीच।*
*गन्ने से मीठे सरल, निचुड़े कोल्हू बीच ।।३५।।*

☐ एक ओर तो हमारी डरपोक नपुंसक 'शराफत' ही सादी 'सराफ़त' है, तो दूसरी ओर अकृतज्ञ मानव भस्मासुर ईश्वर और मौत को भूल कर समग्र राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतन अस्मिता को विनाश की आसुरी अग्नि में स्वाहा कर चुका है। कारण —

ऋण न मानता ईश का, जिस कारण ले श्वास।
उस कूकर से अधम का, कौन करे विश्वास।।४६।।

☐ इसीलिए तो —

कछुए आसन छोड़ चल, जैसी भी है चाल।
थक कर टूटे व्यर्थ वह, लम्वी शशक उछाल।।५६।।

खेल खिलाते राम जी, जीत समझते नीच।
आखिर दुष्टों के लिए, निश्चित क्षण की मीच।।१०६।।

जग-जीवन सुखमय रहे, फिर अध्यातम ग्यान।
बिना नीँव कैसे टिके, आलीशान मकान।।१३०।।

जिनका मुख आगे रहे, पीछे रहते कान।
उन्हें सुना कविता न कर, कविता का अपमान।।१५४।।

निज भाषा अनभिज्ञ जो, पर भाषा का दास।
उस गूँगे के देश का, होगा नहीं विकास।।२३०।।

☐ इस तारतम्य में रोमांश भाषी स्विश महिला का फ्रेंच व्यंग्य स्मरणीय है, 'ला पेर्द से लैँग्युई पेर्द स सैफ़ाई' अर्थात् 'जिसने अपनी भाषा गँवाई उसने अपना विश्वास भी खो दिया'। साथ ही चेतावनी यह भी —

पाप भूमि पर गाड़कर, नकली धर्म निशान।
चाह रहा ईश्वर करे, सचमुच में कल्यान।।२६२।।

प्रीति नीति या भीति के, समय-समय व्यवहार।
खाद खुदाई छाँट से राज्योपवन बहार।।२७६।।

वैसाखी के अन्न-मद, नाचें जो बन भूप।
रोम-रोम रिस रोयँगे, जेठ जलाए धूप।।३०६।।

❑ खाद (यूरिया घोटाले)-खुदाई चारे चर जाने वाले वैसाखी लाल न्याय की ड्योढ़ी पर नाक रगड़ रहे हैं, जबकि 'अराज' का प्रश्न-फन उन फनकार आराजकों पर भी है, जो —

*यदि उसके नेतृत्व मे, नही कही थी खोट।*
*लाखों टके बहा लिए, क्यों जनता के वोट।।३५३।।*

❑ जन-मत सत्ता या जनता का है ही कहाँ ? वह तो जाति-जमात और समूह-वर्गों में विभक्त दलगत राजनीति के हाथों की कठपुतली और बिकाऊ भी है । जैसी जनता, वैसे नेता। उनके हवाले, दिवाले और घोटाले बताते हैं कि राजनीति सर्वाधिक मालदार दशा है। अतः कवि का यह सत्याग्रह भी विचार्य है —

*हर इक घटक समाज का, काया अंग समान।*
*उचित करें उपयोग यदि, करता काम महान।।४६२।।*

❑ यदि हम अनुचित उपयोग न करें, तो समाज-शरीर का प्रत्येक अंग या घटक महान काम कर सकता है। एतदर्थ सत्यनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ वैयक्तिक जीवन-मूल्य नितान्त अपेक्षित हैं। क्यों न हम, भोगवादी घुड़-दौड़ से बाहर निकलें? एतदर्थ —

*कड़वी औषधि से छुटे, ज्यो खुजली का रोग।*
*मरण डरे त्यों छूटते, जग के विषमय भोग।।६०।।*

❑ आत्मानुशासन और आत्म-संयम ही हमें कड़वी औषध की भाँति भ्रष्ट भोग-रोग के कोढ़ और खाज से मुक्त कर सकता है; अन्यथा ईश्वर कृत अटल और अपरिहार्य मृत्यु का डंका तो बज ही रहा है। अतएव —

*शक्ति वही जो कर सके, दुष्टो का संहार।*
*वीर वही परहित करे, स्वयं कष्ट स्वीकार।।४३६।।*

*शत्रु तुम्हारे सामने, हाथो तीर कमान।*
*छिन सोचा तो मृत्यु है, कर झट सर संधान।।४३८।।*

❑ राष्ट्र और समाज का ऐसा वर्तमान आपद्धर्म तभी निभ सकता है, जब हमारी मानसिकता 'सत्यमेव जयते' के एक समान दृष्टिलक्ष्य पर एकाग्र एवं तत्पर हो। तभी हम साहित्यिक और सांस्कृतिक विडम्बना को भी पाट सकते

हैं, अन्यथा —

*कवि ने गीत वही कहा, जिससे पाई वाह।*
*पृथक, हृदय सबका सुने, कौन पराई आह।।७६।।*

❑ पूँजीवादी सामान्तिक संस्कृति में हास्य, व्यंग्य विनोद ही सिरमौर है। संवेदनाओं के नाम पर आहें न तो सुनी जाती हैं, और नाँ ही सराही जाती हैं। इस मौज मस्त जम्हूरियत (जनतन्त्र) में काव्यकर्मी चारण, भाट या जम्हूरे हैं, तो क्या आश्चर्य?

*कवी अकवि हो जायँ जब, हो जब गीत अगीत।*
*पटुता छल का नाम हो, वहाँ कहाँ की प्रीत।।७८।।*

❑ जब वाक्-पटु पोपट (तोता) कवि मानित-सम्मानित और पुरस्कृत हों, तो आनेवाला भविष्यत् काल उनके धन को गणिका, तथाकथित ओढ़े हुए नाम-यश को योगी एकत्र करने वाला धन-संग्रह' तथा उनकी मादक चाल को हाथियों से ज़्यादा नहीं गिनता। कदाचित कवि 'अराज' का मन्तव्य भी यही हो, यथा —

*कवि मे जो आशा पले, धन जस मादक चाल।*
*गणिका, जोगी या करी, गिने, भविष्यकाल ।।७७।।*

❑ अब तो राग-दरबारी राजनीति के प्रभावस्वरूप कलमगीरी के सोपान चढ़े जाते हैं। यह भी कोई नई बात नहीं। सामन्तयुग में भी ऐसा ही होता था, यथा —

*राजनीति की आग मे, रीझ-खीझ के रंग।*
*स्वर्ण बिहारी को मिला, मृत्यु पा गए गंग।।३६५।।*

❑ 'सतसैया' जैसी छेड़-छाड़ करने वाले 'कवि' 'अराज' अपनी पुरुषोत्तम काव्य परम्परानुसारी बिहारी की तरह राज्याश्रयी न होकर मात्र रामाश्रयी हैं। यूँकि—

*कँवल सरीखा मन करो शुचि सुगन्ध सुख धाम।*
*पलँग बिछाओ भक्ति का, पौढ़ रहें श्री राम।।५८।।*

## *मूल्यांकन : कथ्य और शिल्प*

❑ 'अराज दोहावली' का कथ्यपरक बहुमुखी आयाम जिस राम-रस में लीन है, उसी का उत्स एवं परिमार्जित पारायण 'श्री राम जप' है। चूँकि 'अराज

दोहावली' दोहा-शिल्प की पूर्व प्रारम्भिक पीढिका है, पूर्वाभ्यास है, इसलिए इससे अधिकांश दोहे श्री राम जप जैसे कथ्य और शिल्प में चुस्त-दुरुस्त नहीं हैं। मात्रिक दोष भी यत्र-तत्र हैं, यथा —

१. १८वें दोहे की पहली पंक्ति की पूर्व अर्द्धाली में —

'अभिसारिका दुपहर की, 'छन्द गति-लय को बाधित करती है, इसे यदि-दुपहर की अभिसारिका' या और भी सुकर रूपक में ढालें तो 'दोहपहरी-अभिवारिका' कैसा रहेगा?

२. ५५वें दोहे की प्रथम पंक्ति की उत्तरार्द्ध अर्द्धाली में —

'चल गई भौंह कमान (१२ मात्रायें) ब्रज-अवधी शैली में 'चल गइ भौंह कमान' हो सकता है।

❑ 'दोष-दर्शन' ही रचनात्मक समीक्षा का दायित्व नहीं है, अपितु संकेतित दोष-निवारक सर्जनामूलक सलाह-सुझाव भी अपेक्षित है, अर्थात् 'राह बता तो आगे चल' जैसा समीक्षा धर्म भी अनिवार्य है। चित्रकार के चित्र में त्रुटियाँ तो सभी निकाल देंगे, लेकिन उन त्रुटियों को सुधारने के नाम पर भीड़ छट जाएगी। समीक्षक यदि विश्वसनीय सलाहकार भी हो, तो क्या बात है?

❑ "जिस दिन सर्जक समीक्षक के लिए द्वार बन्द करेगा, उस दिन वह हठ की उपासना प्रारम्भ करेगा; और स्वनिर्मित दुर्ग मे श्वासावरोध की मृत्यु मरेगा।"डॉ० 'अराज' की मान्यता भी यही है। (चेतना के पंख' प्रथम सं० १६६५, 'अन्तर्दृष्टि', पृ० ६, पैरा २)। साथ ही मेरे लिए यह अराजाज्ञा भी है।

❑ इसी प्रकार 'अराज-दोहावली' के ८वें दोहे के तुकान्तों पर ध्यान दे -

*'अन्यायी का अन्त में, राघव करते नाश।*
*राम कृपा कर काटते, मोह अन्धता पास।।८।।*

❑ भाषा वैज्ञानिक डॉ० 'अराज' खड़ी बोली के नाश का तुकान्त ब्रज-अवधीपन के 'पास' से मिलाते ही क्यों है? नाश और पाश दोनों खड़ी बोली के होते अथवा ब्रज-अवधी के ही 'नास-पास' होते, तो कैसा होता? अगले नवें दोहे के तुकान्त 'उपदेस' और 'भेस', ब्रज-अवधी छाप हैं। अतः कोई अखरन नहीं। (यहाँ अन्य संस्करणों में 'पाश' ही है। - अराज)

❑ 'अराज दोहावली' में जाने-अनजाने दो दोहे सोरठे की सूरत-सीरत में विद्यमान हैं। यथा —

*परिश्रमी के स्वेद, बहे पाप सन्ताप सब।*
*शेष न कोई खेद, तन-मन धुला असौज सा।।२५।। (४२३)*

*सागर सा बिस्तार, दुखमय इस सन्सार का।*
*राम कृपा से पार, सहज पहुँचते क्षुद्र नर।।४६२।।*

यदि इन्हीं सोरठों को उलटकर लिखें-पढ़ें, तो सटीक दोहे बन जाएँगे। यथा—

*'बहे पाप-सन्ताप सब, परिश्रमी के स्वेद।*
*तन-मन धुला असौज सा, शेष न कोई खेद।।२५१।।*

*'दुखमय इस सन्सार का, सागर सा विस्तार।*
*सहज पहुँचते क्षुद्र नार, राम कृपा से पार।।४६२।।*

अन्ततः उन्हीं के शब्दों में —

*'छमा नही तो कूँजड़ा, छमा करे सम्राट।*
*जग हाटक गुरुता तुले, यहाँ छमा के बाट।।१३४।।*

(सं० ७ में 'बहे पाप सन्ताप सब' वाला दोहा वहाँ संख्या ४२३ के रूप में ही छपा। फिर भी सुझाव के लिए आ भारी हूँ। दुखमय इस सन्सार का दोहा सं० ७ से निकाल दिया है क्योंकि वह मेरी अन्य पुस्तक में है। - अराज)

सम्पर्क :
३६/४, शास्त्री नगर, कानपुर-२०८००५

'अराज दोहावली' के सन्दर्भ में

# ७. दोहों की सतसई [1]

— डॉ० सुधेश

❑ हिन्दी में दोहों की सतसई की पुरानी और लम्बी परम्परा है। इस परम्परा को आधुनिक काल में भी कुछ कवियों ने आगे बढ़ाया हे। वियोगी हरि की 'वीर सतसई' आधुनिक काल में ही लिखी गई। इसी परम्परा में डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' की 'अराज-दोहावली' आती है, जिसमे ७०२ दोहे हैं।

❑ सतसई की परम्परा के पीछे दोहा छन्द की लोकप्रियता निहित है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल, मध्यकाल में दोहा छन्द में ढेर सारा साहित्य लिखा गया। आधिुनिक काल में इसकी प्रतिष्ठा कम अवश्य हुई और गद्य को कविता कहने वालों ने इसे साहित्य के हाशिये पर डाल दिया था। पहले इसका स्थान गीत ने लिया, फिर छन्दयुक्त या छन्दहीन रचनाओं ने और लगने लगा कि दोहा लिखना पुरातनता का परिचायक था, आधुनिकता का नहीं। आज के यथार्थवादी युग में कुछ लोगों के लिए गीत लिखना भी पुरानी रुचि का सूचक है, जबकि ऐसा सोचना स्वयं एकांगी दृष्टिकोण है। पिछले अनेक वर्षों में दोहों की लोकप्रियता बढ़ी है और अनेक हिन्दी कवियों ने उत्कृष्ट दोहों की रचना कर दोहा छन्द की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित किया है। मेरे सम्पादन में 'सहजकविता' त्रैमासिक का जो ग्यारहवाँ-बारहवाँ संयुक्तांक (जुलाई-दिसम्बर १९९९ई०) प्रकाशित हुआ था, उस के सम्पादकीय में मैंने दोहा छन्द के ऐतिहासिक महत्त्व तथा आधुनिक युग में उसकी प्रासंगिकता पर विस्तार से विचार किया था।

❑ यह एक रोचक तथ्य है कि सतसई में दोहे ही संकलित हुए, पद, छप्पय, सवैया आदि अन्य छन्द नहीं। ऐसी कोई सतसई पुराने ज़माने से लेकर आज तक शायद ही मिले जिसमें दोहा को छोड़कर अन्य छन्दों में लिखित रचनाओं का संकलन हुआ हो। तो सतसई शब्द सात सौ दोहों के संकलन के लिए रूढ़ हो गया। इसके मूल में दोहा छन्द की संक्षिप्तता, कसावट, स्वतन्त्रता, लचीलापन, उसमें विविध विषयों की व्यंजना की क्षमता, छन्दलय का निर्वाह, संगीतमयता, आदि अनेक गुण हैं, जिनके कारण दोहे का जादू

1. *'अराज-दोहावली' - कवि डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज', प्रकाशक स्वयं कवि बी-२बी/३४ जनकपुरी, नई दिल्ली-११००५८, सन् १९९७ ई०*

सिर चढ़कर बोलता है। अतः सतसई-परम्परा के पीछे दोहे का जादू काम कर रहा था।

❑ हिन्दी के प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य में अधिकांश कविता प्रबन्धात्मक है अर्थात् प्रबन्धकाव्य (महाकाव्य तथा खण्ड काव्य) अधिक लिखे गये क्योंकि किसी कवि को महाकवि का सम्मान पाने के लिए महाकाव्य लिखना ही पड़ता था। प्रबन्धकाव्य के वर्चस्व के बावजूद उस समय दोहे की लोकप्रियता क्यों बनी रही, इस पर यहाँ विचार करना प्रासंगिक होगा। पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त होने के कारण दोहा को मुक्तक शैली की रचना, अथवा मुक्तक काव्य माना जा सकता है। सहज ही जिज्ञासा होती है कि प्रबन्धकाव्य के आगे मुक्तक काव्य का क्या मूल्य? तब प्रबन्धकाव्य के वर्चस्व वाले प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य में दोहे का जादू 'सतसई' के रूप में प्रकट हुआ, जिसमें प्रत्येक दोहा मुक्त होते हुए भी सतसई प्रबन्धकाव्य की ध्वनि देने लगी। सतसई का रूप धारण कर दोहा कविता के मैदान में आ डटा। आधुनिक काल तो मुक्तककाव्य का काल है, जबकि प्रबन्धकाव्य की लोकप्रियता बहुत कम हो गई है। अब दोहे को खुल खेलने के लिए अधिक विस्तृत मैदान मिल गया। इस मैदान को कुछ लोग गद्यकविता के झण्डे लेकर जीतने की कोशिश कर रहे हैं, पर दोहा सब को अँगूठा दिखाते हुए आगे बढ़ा जा रहा है।

❑ हिन्दी की सतसई परम्परा का प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओं पर भी देखा जा सकता है। उर्दू में बारहमासे अनेक कवियों ने लिखे, सम्भव है कि किसी शायर ने सतसई भी लिख डाली हो। यह किसी शोधार्थी के लिए शोध का विषय हो सकता है। उर्दू में अनेक कवि दोहे लिख रहे हैं, यह बहुत से कविताप्रेमी जानते होंगे।

❑ सतसई की परम्परा में अनेक दोहा-संकलनों को रखा जा सकता है, जो अनेक कवियों ने प्रकाशित कराये हैं। आवश्यक नहीं कि सब में सात सौ दोहे हों, पर सतसई परम्परा के कुछ नये संस्करण निकल आये हैं। इस समीक्षा में अनेक दोहा- संकलनों तथा सतसई के नये संस्करणों की चर्चा करने से विषयान्तर होगा, पर एक संस्करण का उल्लेख रोचक है। देवेन्द्र शर्मा इन्द्र ने 'सप्तपदी' संकलन में सातकवियों के सात सौ दोहे प्रकाशित कराये हैं। 'सप्तपदी' के चार खण्ड छप चुके हैं, तीन और छपेंगे। इस प्रकार 'सप्तपदी'

सात खण्डोँ मेँ होगी और प्रत्येक खण्ड एक सतसई होगा। यह नया प्रयोग हिन्दी की सतसई परम्परा का विस्तार अथवा एक नया संस्करण है । सतसई के अन्य संस्करणोँ की चर्चा किसी दूसरे लेख मेँ करूँगा।

❑ सतसई विषयक इस संक्षिप्त भूमिका के बाद 'अराज-दोहावली' पर विचार करेँ। कवि ने इसे 'सतसई' नहीँ कहा है, पर इस मेँ संकलित ७०२ दोहे इस बात की गवाही दे रहे हैँ। कवि ने इसे अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया है, विषय क्रमानुसार नहीँ। यदि दोहोँ को विषयक्रमानुसार रखा जाता तो पता चलता कि कितने विविध विषयोँ तक उसकी दृष्टि पहुँची है। पर पढ़ने पर तो यह विदित हो ही जाता है कि कवि ने धर्म, नीति, स्वभाषा प्रेम, राजनीति, आधुनिक फैशन, प्रेम-शृंगार, प्रकृति, सामाजिक कुरीतियाँ, चुनाव, जनतन्त्र, नेता, राजा, देश, नागरिक सभ्यता, नसबन्दी, नारी, राम, काल, न्याय, साम्प्रदायिक एकता आदि अनेक विषयोँ पर दोहे लिखे हैँ। इस से इस बात की पुष्टि होती है कि आजकल दोहा भक्ति, नीति, शृंगार तक सीमित नहीँ रहा है, बल्कि आधुनिक मानव की अनेक- मुखी तथा संश्लिष्ट वृत्तियोँ का दर्पण बन गया है।

❑ अराज ने एक दोहे मेँ लिखा है –

*अग्नितप्त सज निखरता, भावुक गहन विचार,*
*तब दोहा होकर खिले केवल कुन्दन सार।*

❑ यह दोहा 'अराज-दोहावली' पर भी लागू होता है, जिसमेँ कवि की भावुकता गहन विचार के समन्वय से उसी प्रकार निखर गई है, जैसे सोना अग्नि मेँ तप कर ही कुन्दन बनता है और तब किसी के सौन्दर्य पर सजता है। इस काव्यकृति मेँ अनेक उत्कृष्ट दोहे हैँ। कुछ उदाहरण लीजिये –

*अनियारे दीरघ नयन, गये हृदय को बेँध,*
*नैनोँ की दीवार से, लगी हृदय को सेँध। (पृ०१७)*

*अश्रु गाल से फिसल झट, हाते कंचुकिलीन,*
*हृदयदहन के शमन को, वारि उलीचे मीन। (पृ०१६)*

❑ 'अनियारे दीरघ नयन' से बिहारी का स्मरण हो आता है, पर नैनोँ के माध्यम से हृदय मेँ प्रेम के स्फुरण विषयक कल्पना अराज की अपनी मौलिक कल्पना है। मीन आकृति वाले नयनोँ से अश्रुओँ का ढलना विरहिणी को

शान्ति तो देता ही है, साथ ही उसकी गीली कंचुकी ह्रदय को शीतल स्पर्श भी देती है। यह आधुनिक कवि की मनोरम कवित्त्व शक्ति का परिचायक है। प्रेम और शृंगार सम्बन्धी अनेक दोहे इस संग्रह में बिखरे पड़े हैं। उससे अधिक संख्या राम भक्ति सम्बन्धी दोहों की होगी। प्रेम और भक्ति का ऐसा संगम आज के कवियों के रचना संसार में कम ही मिलेगा। लगता है कि डॉ० अराज को लोक की जितनी चिन्ता है, उस से कम परलोक की नहीं है।

❑ सामाजिक, राजनीतिक प्रश्नों पर भी कवि की लेखनी निर्द्वन्द्व होकर चली है। आज के नेताओं पर सीधी चोट इस दोहे में है –

*गद्दी चढ़कर लूटते, नेता का क्या खोट,*
*नकद दाम देकर लिये, उसने सारे वोट। (पृ०२८)*

❑ चुस्त कपड़ों के फैशन पर कवि की उक्ति है –

*ज्यों ज्यों कपड़े चुस्त कर, बाँधा यौवन ज्वार,*
*त्यों त्यों हर इक अंग में, आया नवल उभार। (पृ०३५)*

❑ देश बेच कर धन कमाने वालों पर कवि का कथन है–

*देश बेच कर भी अगर, धन मिलता है आज,*
*तो उसको भी बेच दें, जिनके सिर पर ताज। (पृ०३८)*

❑ इस प्रकार के अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं।

❑ प्रेम, भक्ति, राजनीत्ति के बाद इस संकलन के दोहों की उल्लेखनीय विशेषता है व्यंग्य की चुभन। आधुनिका के लक्षणों पर कवि की व्यंग्योक्ति है –

*भागा सिर पर पाँव रख, हनीमून का ख्याल,*
*देख खून पोते अधर, नख लम्बे विकराल। (पृ० ४६)*

❑ कर व्यवस्था में पूँजीपति बच निकलते हैं, पर नौकरी पेशा लोग उसमें फँस जाते हैं। वर्तमान कर व्यवस्था पर कवि का सुझाव है –

*न्याय तभी होगा लगे, टिकट मुटाई रेट,*
*गौरमेन्ट के कर लगें, माप-माप कर पेट। (पृ० ४२)*

❑ विषयों की विविधता देखकर इस संकलन से यह पुरानी उक्ति सिद्ध हो जाती है कि 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि'। एक और बात का भी प्रमाण

कदम कदम पर मिल जाता है कि डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया के पास मात्र कवि हृदय नहीँ है, बल्कि कविता-रचना की भरपूर सामर्थ्य है।

❑ 'अराज दोहावली' पढ़ते हुए मुझे लगा कि कवि ने दोहा छन्द के शास्त्रीय नियमोँ का पूरी तरह पालन किया है, पर कई दोहोँ मेँ नियम-पालन और शैली के कसाव के बावजूद भाषा के प्रवाह की रक्षा नहीँ की जा सकी, और कहीँ शब्द की शुद्धता की रक्षा नहीँ की जा सकी। उत्कृष्ट दोहे की रचना के लिए नियम पालन से अधिक भाषा के प्रवाह की आवश्यकता है। जब यह प्रवाह भंग होता है तो नियम पालन के बावजूद दोहे में वहा तेज और मारक शक्ति नहीँ रहती जो उसे परवान चढ़ाती है। 'हृदय' को प्राय: सभी स्थलोँ पर 'रिदय' के रूप मेँ छापा गया है, जो कम्प्यूटर कम्पोज़िंग की कमी हैं, पर वह अखरती है। इसी प्रकार 'दर्प' को 'दर्प' के रूप मेँ देखना सुहाता नहीँ। इस प्रकार की कम्पो जिंग सम्बन्धी कई भूलेँ पाठक को अखर सकती हैँ। पर दोहा संख्या ११२ मेँ जब स्वयं कवि 'कवि' शब्द को 'कवी' के रूप मेँ लिखता है (मात्रासंख्या और लय की रक्षा के लिए ही) तो कानोँ को सुहाता नहीँ। वह दोहा इस प्रकार है —

*कवी अकवि हो जायँ जब, होँ जब गीत अगीत,*
*पटुता छल का नाम हो, वहाँ कहाँ की प्रीत। (पृ०२५)*

❑ इसी प्रकार दोहा संख्या २०० मेँ 'अध्यात्म' को 'अध्यातम' लिखा गया है। यह ठीक है कि 'अध्यात्म' लिखने मेँ लय भंग होती और एक मात्रा कम पड़ती, पर तत्सम शब्द को बिगाड़ कर उसे प्रचलित तद्भव शब्दोँ का गौरव नहीँ दिया जा सकता। मैँ तद्भव शब्दोँ के प्रयोग के विरुद्ध नहीँ हूँ पर कविता मेँ वे ही तद्भव शब्द काम के हैँ, जो उस रूप मेँ प्रचलित होँ। प्रत्येक तत्सम को विकृत कर उसे तद्भव के आसन पर नहीँ बिठाया जा सकता है। तद्भव भी प्रचलित शब्दोँ को ही कहा जाता है और वे समाज मेँ प्रचलन के कारण ही ग्राह्य बन जाते हैँ। दोहा संख्या ३६१ मेँ 'तिथि' के बजाए 'तिथी' का प्रयोग भी अखरता है, यद्यपि 'तिथी' से १३ मात्राओँ का नियम पालन होता है। दोहा संख्या ५८८ मेँ 'सिर्फ' को 'सिरफ़' लिखना भी मुझे नहीँ भाया।

❑ सुकवि और भाषा-वैज्ञानिक डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया की काव्यभाषा कुल मिलाकर सुगठित, स्तरीय, काव्योचित, संस्कृत की ओर झुकी हुई और

प्रभावकारी है। ऊपर मैंने जिन शब्द प्रयोगों की चर्चा की, उनका मुख्य कारण कवि का नियम पालन आग्रह है। दोहा कवियों की भाषा सामर्थ्य की परीक्षा भी लेता है। उत्तम दोहे की रचना के लिए उत्तम भाषा ज्ञान भी चाहिए। कविता के लिए पुस्तकीय भाषा के बजाए जनता में प्रचलित भाषा का ज्ञान चाहिए। कवि को शास्त्रज्ञ भी होना चाहिए, पर श्रेष्ठ कविता प्रायः शास्त्र का अतिक्रमण कर जाती है।

❑ 'अराज दोहावली' के प्रकाशन के लिए मैं अराज जी को बधाई देता हूँ। इससे आज के सन्दर्भ में दोहे की सार्थकता सिद्ध होती है।

सम्पर्क :
फ़्लैट १३३५ पूर्वांचल
जवाहरलाल नेहरू विश्व विद्यालय,
नई दिल्ली

## ८. तत्त्वान्वेषणे तत्पर : डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया अराजः

—डॉ० लीलाधर वियोगी

❑ डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' बहु-आयामी व्यक्तित्व और सर्वतोमुखी प्रतिभा के स्वामी हैं। विविध विषयों पर पचास के लगभग रचनाएँ 'अराज' की अखण्ड साधना की सूचक हैं। एक व्यक्ति के रूप में अराज विद्या, विनम्रता एवं सहजता से सम्पन्न हैं, एक प्रभु-भक्त, मानवतावादी साधक हैं, धर्म-चिन्तन के क्षेत्र में एक विभूति हैं, पूर्वाग्रहों, दुराग्रहों से रहित इनका चिन्तन अत्यन्त स्पष्ट एवं पारदर्शी है। 'अराज' के शब्दों में "मेरे लिये धर्म, समाज, राजनीति, साहित्य, ईश्वर, जाति, राष्ट्र, देश, भाषा, लिपि, इतिहास, भूगोल, विद्या, छन्द, कविता, गीत, ग़ज़ल, भाव, आचार, विचार, भोग, भक्ति, ज्ञान, कर्म, अकर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, आनन्द आदि अगणित शब्दों की अर्थवत्ता मेरे अपने चिन्तन के अनुरूप होने से स्वानुभूत अथवा स्वगृहीत है, स्व-स्वीकृत है। परिणामतः मैं सनातनी, आर्यसमाजी, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन, साम्यवादी प्रगतिशील, जनवादी, जनतन्त्रवादी, अनीश्वरवादी, सब का हूँ, जो यहाँ नहीं गिना गया, उसका भी हूँ किन्तु किसी के खाँचे में पूरी तरह अट नहीं सकता। (धार्मिक चिन्तन, पृ० ४) इस उद्धरण को यहाँ अवतरित करने का हमारा प्रयोजन यह प्रदर्शित करता है कि डॉ० 'अराज' का दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक है, वह संकुचित वृत्तों में बन्द नहीं है। उनका धर्म-चिन्तन भी इसी उदार दृष्टि का प्रतिफल है।

❑ धर्म अथवा धर्म से जुड़े अन्य विषयों पर, विचार करते समय, उन विषयों पर चिन्तन-मनन करते समय, हम प्रायः आग्रहों को छोड़ नहीं पाते। हमारी परम्परा, हमारे संस्कार, हमारी शिक्षा-दीक्षा हमें एक ही दिशा मे सोचने को बाध्य करती हैं। हमारे लिये धर्म का विरोधी अधर्म है, संस्कृति का विरोधी 'विकृति' है। जो हमारे धर्म को नहीं मानता, वह 'विधर्मी' है। इस प्रकार के चिन्तन से हम सत्य के केवल एक ही पक्ष से साक्षात्कार कर पाते हैं, पूर्ण सत्य का उद्‌घाटन हमारे सम्मुख नहीं हो पाता। धर्म का विरोधी 'प्रतिधर्म' है, संस्कृति की विरोधी 'प्रति संस्कृति' भी हो सकता है।

❑ यदि इस दृष्टि से सोचने विचारने की स्वतन्त्रता हमें मिल सके, तो निश्चय ही हमारा चिन्तन सत्यान्वेषण में, सत्य की खोज में अधिक कृतकार्य हो

सकता है। धर्म के नाम पर व्याप्त कतिपय विकृतियों का विरोध करते हुए, उन्हें नकारते हुए, 'अराज' ने सभी धर्मों की मूल भूत एकता को स्वीकार किया है। लेखक की यह सकारात्मक, सर्वस्वीकारिणी चिन्तन-धारा, धर्म-चिन्तन को सही दिशा प्रदान करती है। 'अराज' निश्चय ही सत्यान्वेषण में तत्पर हैं, सत्य के दर्शन के लिये आतुर हैं, साथ ही जागरूक भी। तत्त्व-बोध के लिये सतत प्रयासशील 'अराज' की रचना 'धार्मिक-चिन्तन' पर विचार करने से पूर्व इतनी-सी पृष्ठभूमि परमावश्यक थी।

❑ धर्म के मूल में 'आस्तिकता', ईश्वर की सत्ता एवं महत्ता की स्वीकृति निहित होती है । ईश्वर के अस्तित्व पर गहन आस्था और ईश्वरीय गुणों पर अगाध श्रद्धा ही आस्तिक दृष्टि है। डॉ० 'अराज' ने ईश्वर एवं ईश्वर के विलक्षण गुणों का भावमय वर्णन किया है। उस वर्णन में स्वानुभूति की तीव्रता भी है और जीवन और जगत् की व्यावहारिकता भी 'ईश्वर है', भले ही कोई इस तथ्य को माने या न माने। ईश्वर-विरोधी, निरीश्वरवादी या ईश्वर की उपेक्षा करने वाले ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करें या अस्वीकार, इससे ईश्वर के अस्तित्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता। ईश्वर वस्तुतः मनुष्य की अनुभूति का विषय है। प्रत्येक साधक की अनुभूति-भिन्नता के कारण, ईश्वर के रूप-स्वरूप का वर्णन भी भिन्न-भन्न-सा हो जाता है किन्तु उसके अस्तित्व में, उसके रूप में वस्तुतः कोई भिन्नता नहीं होती। ईश्वर एक विशाल, विराट सत्य है। साधक उसके अंश मात्र को ही अपनी साधना से जान पाता है, अनुभव कर पाता है, मनीषी अपनी वाणी की क्षमता के आधार पर, ईश्वर के मात्र 'अंश' को ही अभिव्यक्त कर पाता है, किन्तु वह अंश नहीं है, पूर्ण है, अंश है। अतः सत्य-स्वरूप ईश्वर को जानना वस्तुतः सत्य की ही साधना है। सत्यान्वेषण एक महदनुष्ठान है । सत्य की खोज शताब्दियों से, विश्व के कोने-कोने में होती आई है, भविष्य में भी होती रहेगी, आज भी अनेक साधक इस अनुष्ठान में तत्पर हैं। सत्य को पाने के लिये साधकों का क्या कर्त्तव्य है, इस विषय में 'अराज' कहते हैं- "हमें हर उस महापुरुष की बात सुनने के लिये, अपने कान और मस्तिष्क को खुला रखना चाहिये जो हमें सत्य बताना चाहता है, फिर वह हमारे सम्प्रदाय का है या नहीं, यह सोचना उचित नहीं। हम अपने आपको किसी घेरे में बन्द करके 'पूर्ण सत्य' को कैसे पाएँगे? पूरा सत्य

तो बहुत विशाल है...... अत: यदि हमें सत्य की ओर बढ़ना है तो हमें सा की बातें पढ़नी-सुननी होंगी उन पर विचार मनन करना होगा और उनसे निष्कर्ष निकालना होगा कि सत्य क्या है।" स्पष्ट ही डॉ० अराज सभी लोगों की, सत्य के अन्वेषकों की बात सुनने का आग्रह तो करते हैं, सम्प्रदाय के घेरे को तोड़ने का भी अनुरोध करते हैं किन्तु निष्कर्ष निकालने की, मननपूर्वक स्वीकार-अस्वीकार करने की स्वतन्त्रता भी देते हैं। साम्प्रदायिक संकीर्णता को त्याग कर, खुले मन से, सभी धर्मग्रन्थों से, सभी महापुरुषों से यह जानने का प्रयास किया जाना चाहिये कि सत्य क्या है। प्रत्येक आस्तिक व्यक्ति के लिये यह परमावश्यक है कि वह दृढ़ रूप में यह विश्वास करे कि ईश्वर है। उस ईश्वर की अनेक नामों से, अनेक रूपों में विभिन्न मतों सम्प्रदायों के लोग अपने-अपने ढंग से पूजा करते हैं। धार्मिक [illegible] इस रचना से यह स्पष्ट होता है कि धर्म का मूल आस्तिक भावना है और आस्तिकता का आधार है ईश्वर के अस्तित्त्व में सुदृढ़ विश्वास। ईश्वर एक है, वह सत्चित्त, आनन्द स्वरूप है, सच्चिदानन्द है। अपनी-अपनी सुविधा इच्छा परम्परा के कारण लोग उसे अलग-अलग नामों से पुकारते हैं, परन्तु वह एक है, अखण्ड है, सत्य है, शाश्वत है, सनातन है। उसी से जगत् की उत्पत्ति स्थिति और समाप्ति होती है। डॉ० अराज का यह मत स्पष्ट ही हिन्दू धर्म-चिन्तन पर अवलम्बित है। ईश्वर के सम्बन्ध में यह सार्वभौमिक दृष्टि, भारतीय धर्म साधना के लिये कोई नयी खोज नहीं है।

धर्म के इस आदर्श का इस उत्कृष्ट 'सिद्धान्त' का वर्णन करने के पश्चात् धर्म के नाम पर व्यावहारिक रूप में जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है उस पर भी अराज की 'टिप्पणी' बहुत महत्त्वपूर्ण है।

१. अनेक व्यक्ति अनीश्वरवादी इसलिये हो गए कि उन्हें ईश्वरवादियों के कर्मों से घृणा हो गई। उन्होंने महसूस किया कि ईश्वरवादी झूठ बोलते हैं (पृ०१६)

२. एक ईश्वर के नाम पर अनेक सम्प्रदायों की स्थापना भी ईश्वरवाद से घृणा को जन्म देने के कारण बनी है। इन दोनों टिप्पणियों पर गम्भीर रूप से विचार करने के आवश्यकता है। ईश्वरवादी, सकारात्मक चिन्तन जितना प्राचीन है, उतना ही प्राचीन अनीश्वरवादी नकारात्मक चिन्तन भी है। भारतीय दर्शन

शास्त्रों में एतद्विषयक विवाद एवं तर्क यह स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर के अस्तित्त्व को स्वीकार न करना 'बौद्धिकता' का भी परिणाम है। वर्तमान युग में वैज्ञानिक चिन्तन एवं तर्क-प्रधान विचार-पद्धति के कारण भी अनीश्वरवादी चिन्तन को बल मिला है। अराज की टिप्पणी नास्तिकता के विकास का एक ही पक्ष प्रस्तुत करती है। इनकी दूसरी टिप्पणी के विषय में भी यह कहना समीचीन है कि यह एकांगी है। एक ईश्वर के नाम पर अनेक सम्प्रदाय होना, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि कारणों से ही सम्भव हुआ है एकमात्र 'ईश्वरवाद के घृणा' के कारण नहीं। पूजा-उपासना की पद्धतियों की विभिन्नता तथा कर्मकाण्ड के विविध रूपों के कारण भी धर्म-सम्प्रदायों का विकास हुआ है। इन सम्प्रदायों के अनुयायी अन्य मतों का सम्मान करते हुए अपने-अपने ढंग से पूजा-उपासना में लीन रहते हैं।

❑ इसके साथ ही डॉ० 'अराज' के इन विचारों से भी कोई विचारशील व्यक्ति असहमत नहीं हो सकता जब वह कहते हैं- "यदि कोई धर्म के नाम पर इन्सान को कष्ट पहुँचाता है तो निःसन्देह वह ईश्वर के लिये काम नहीं कर रहा, वह अपनी गद्दी के लिये काम कर रहा है।....धर्म के नाम पर ढोंग करने वालों ने धर्म का प्रचार करने के नाम पर इन्सानों को लड़ाया है।" (पृ०१७) कुछ लोगों ने उसे (धर्म को) धन्धा बना लिया है। (पृ०१६)। डॉ० अराज के चिन्तन में मात्र सिद्धान्त-प्रतिपादन ही नहीं है, उन्होंने अत्यधिक जागरूकता से इसके व्यावहारिक पक्ष पर भी विचार किया है।

❑ ईश्वर या धर्म तर्क का नहीं, बुद्धि का नहीं, आस्था का, विश्वास का श्रद्धा का विषय है। यह विश्वास जितना दृढ़ होगा, आस्था जितनी गहन होगी हमारी आस्तिक भावना उतनी सफल होगी। गहरी श्रद्धा से ही हम प्रभु के सम्मुख विनत-भाल हो सकते हैं। 'ईश्वर में विश्वास' शीर्षक अध्याय 'धार्मिक-चिन्तन' का आधार प्रस्तुत करता है, रचयिता के विचारों, विश्वासों धारणाओं, मान्यताओं को स्पष्ट करता है। इस शीर्षक से प्रस्तुत लेख की अन्तिम पँक्तियों में भारतीय तत्त्व चिन्तन को गहन रूप अराज के शब्दों में बहुत ही प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुआ है- "ईश्वर सत् है। वह था, है और रहेगा। जब वही ऐसा है जो हमेशा रहेगा, तो हम उसके सिवा और किसी के स्थायी रूप से रहने की कल्पना कैसे कर सकते हैं?......ईश्वर

चित् है। वह सब जानता है। हम बहुत कम जानते हैँ। जो जानते हैँ, वह भी गलत हो सकता है.....ईश्वर आनन्द है। वह अनुभूति द्वारा समझा जाता है। वह सुख-दुःख की स्थिति से परे है। कभी किसी के मन में ईश्वर जागता है तो वह उस आनन्द को अनुभव करता है। शब्दोँ द्वारा उसे समझाना बहुत कठिन है। ('धार्मिक-चिन्तन' पृ० १८, १९) इसी अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति का वर्णन उपनिषदोँ में हुआ है, इसे ही कबीर ने 'गूँगे का गुड़' कहा है।"सब इन्सान मेरे ईश्वर की सृष्टि हैँ । हम सब एक ही परम पिता की सन्तान हैँ" यही आस्तिक दृष्टि है, यही धर्म-भावना का मूल बिन्दु है, यही भारतीय धर्म-साधना का केन्द्रीय तत्त्व है और यही है अराज का अनुभव-सिद्ध बोध।

❑ 'धर्म' के सम्बन्ध में चिन्तन-मनन करने वाले किसी भी विद्वान् के लिये सम्प्रति यह अनिवार्य-सा हो जाता है कि वह 'धर्म-निरपेक्षता' का मूल्यांकन करे । पिछली लगभग आधी शताब्दी से 'साम्प्रदायिकता' और 'धर्मनिरपेक्षता' शब्दोँ का जो 'अर्थापकर्ष' हुआ है, इन शब्दोँ को अपने मूल सन्दर्भ से काट कर इनके साथ जो भाव-बोध जोड़ा गया है, इस दृष्टि से तो इस विषय पर वस्तुपरक रीति से विचार करने की और भी अधिक आवश्यकता है । हमें यह कहने में कोई दुविधा नहीँ है कि 'धर्म-निरपेक्षता' के नाम पर धर्म के प्रति 'उदासीनता' और धर्म''विरोध' की भावना पनप रही है। डॉ० अराज ने गम्भीरतापूर्वक इस विषय की चर्चा की है। वह लिखते हैँ — मोटे तौर पर हमारी (भारत सरकार की) घोषणा का अर्थ है हमारे शासन को इससे कोई मतलब नहीँ कि भारत का नागरिक किस मज़हब से सम्बन्ध रखता है। कोई हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध या जैन है या कोई ईश्वर या मज़हब में विश्वास ही नहीँ रखता। यह प्रत्येक नागरिक का व्यक्तिगत मामला है। हमारी सरकार को इससे कुछ लेना-देना नहीँ।" (पृ०५२) धर्म-निरपेक्षता का वास्तविक एवं आदर्श-रूप का प्रतिपादन ऊपर की पंक्तियोँ में किया गया है, किन्तु व्यवहार-रूप में धर्म-निरपेक्षता के नाम पर जो-कुछ किया-कराया जा रहा है 'अराज' निश्चय ही उससे असन्तुष्ट हैँ। धर्म-निरपेक्षता के स्थान पर 'सम्प्रदाय-निरपेक्षता' को वह अधिक संगत मानते हैँ और उनका यह कथन विशेष रूप से ध्यातव्य है — "सम्प्रदाय-निरपेक्ष" सरकार को सब से पहले स्वयं सिद्ध करना होगा कि वह स्वयं सम्प्रदाय-निरपेक्ष है।"(पृ०४२) इतना ही

नहीं डॉ० अराज ने सरकार के लिये कतिपय उपयोगी सुझाव भी दिये हैं। इन सुझावों में "सब से अधिक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य जो सरकार को पूरा करना होगा, वह यह है कि किसी सम्प्रदाय के लिये विशेष सुविधा की बात को उठने ही न दिया जाए।"(पृ०४३) इसी सन्दर्भ मे लेखक का यह कथन बहुत ही उपयोगी है— 'किसी धार्मिक स्थान का राजनीतिक प्रयोग या किसी सम्प्रदाय-विशेष से भयभीत होकर या सम्प्रदाय विशेष को प्रसन्न करने के लिये धार्मिक स्थान को राजनीति का अखाड़ा बनने देना देश के लिये घातक सिद्ध हो सकता है।............ किसी सम्प्रदाय के आधार पर कहीं कुछ पद सुरक्षित रखना भी साम्प्रदायिक होता है। ऐसा संरक्षण अन्ततोगत्वा सम्प्रदायों में तनाव और झगड़ों का कारण बनता हैं।'(पृ०४२-४३)

❑ धर्म-चिन्तन के अन्तर्गत रचनाकार ने धर्म और जाति, धर्म और भाषा, धर्म और राष्ट्र जैसे गम्भीर विषयों पर भी अपना मौलिक चिन्तन इस रचना के द्वारा प्रस्तुत किया हैं। वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में अराज के विचार इतने व्यावहारिक हैं, वर्तमान परिस्थितियों मे देश-कालानुरूप हैं, कि यदि उन्हें स्वीकार किया जा सके तो जाति या वर्ण को लेकर सारा संघर्ष समाप्त हो सकता है। डॉ० भाटिया मानव-मात्र को एक 'जाति' मानते हैं जिसे वह 'वैज्ञानिक सत्य' कहते है — "किसी देश के पुरुष और किसी अन्य देश की स्त्री से 'मानव' ही जन्म लेता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र सभी मानव-जाति के हैं। काले, गोरे, लाल, पीले सभी मानव एक ही जाति के हैं। यह वैज्ञानिक सत्य है।" (पृ०८४)

❑ राजनैतिक कारणों से 'भाषा' को विवाद का विषय बना दिया गया है और सभी धर्मावलम्बियों को ऐसा लगने लगा है कि यदि यह भाषा नष्ट हो गई, तो हमारा धर्म भी नष्ट हो जाएगा। इस विषय में अराज पूछते हैं— 'क्या सचमुच धर्म का सम्बन्ध भाषा से है? क्या धर्म के नाम पर भाषा का झण्डा खड़ा करना उचित कहा जा सकता है? व्यावहारिक रूप में यह देखा गया है कि हिन्दुओं का संस्कृत के साथ मोह, बौद्धों का पालि से, जैनियों का अपभ्रंश से, सिक्खों का पंजाबी से, उर्दू-फारसी से मुसलमानों का, और अंग्रेजी से ईसाइयों का मोह स्पष्ट है। इस सन्दर्भ में अराज के विचार निश्चय ही मनन-योग्य हैं। वह कहते हैं— 'धर्म तो भावना का नाम है। धर्म और

भाषा के बीच केवल यही सम्बन्ध हो सकता है कि भाषा को धर्म की व्याख्या के लिये प्रयोग किया जाए ताकि धर्म का मनुष्यों के जीवन को सुखी बनाने का मूल उद्देश्य पूरा हो सके।,(पृ०३८).... 'धर्म-विशेष के साथ भाषा-विशेष को किन्हीं धार्मिक कारणों से चिपकाया जाता है।'(पृ०३६) डॉ० अराज की यह मान्यता है कि भारत-जैसे देश में सांस्कृतिक कारणों से भाषा-विवाद उठना ही नहीं चाहिये था किन्तु कतिपय कारणों से यह विवाद उभरा है। इस विवाद की शान्ति के लिये, इस समस्या के निवारण के लिये अराज ने कुछ बहुत ठोस एवं व्यावहारिक सुझाव दिये हैं जो उनके चिन्तन-मनन पर आधारित हैं।

❑ धर्म और राष्ट्रीयता, धर्म-चिन्तन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। भारत के ऐतिहासिक सन्दर्भ में तो पिछला एक शताब्दी का यह एक अत्यन्त ज्वलन्त प्रश्न रहा है। धर्म के नाम पर देश का दुर्भाग्य-पूर्ण विभाजन और आज भी उसकी थोड़ी-बहुत कटुता की, तिक्तता की, अनुभूतियाँ लोगों को उद्वेलित करती हैं। अतः अराज का इस सम्बन्ध में चिन्तन करना और इस विषय में अपने विचारों को प्रस्तुत करना निश्चय ही उनके लेखकीय दायित्व का निर्वाह करना माना जा सकता है। 'धर्म' राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं है। यह एक आदर्श स्थिति है, एक उत्कृष्ट अवधारणा है, एक सर्वमान्य सिद्धान्त है किन्तु व्यवहार में क्या हो रहा है, क्या होता रहा है, इसे भला कोई जागरूक व्यक्ति कैसे दृष्टिविगत कर सकता है?

❑ धर्मान्धता ने राष्ट्रीयता को कितना आघात पहुँचाया है, क्या यह सर्व विदित तथ्य नहीं है? डॉ० अराज भी इसे स्वीकार करते हैं। इस समस्या के समाधान के लिये अराज के दो महत्त्वपूर्ण सुझाव है —(१), कुछ धर्मान्ध व्यक्ति हर धर्म में हैं, जो धर्म के मूल अभिप्राय के लिये नहीं, वरन् बाह्य गौण व्यवस्थाओं के लिये झगड़ते हैं और अपनी व्यवस्थाएँ दूसरों पर थोपने का प्रयत्न भी करते हैं। जब अन्य धर्मानुयायियों की सीमा का अतिक्रमण होता है, तब समस्या खड़ी होती है। यदि हम सभी भारतीय अपने धर्म को उस सीमा तक रखें जो किसी अन्य के धर्म की सीमा का अतिक्रमण नहीं करती तो इस समस्या के उठने का कोई कारण नहीं रहेगा।

(२) भारत में हिन्दू-धर्म बहुप्रचलित है। हिन्दुओं के अनेक सम्प्रदाय हैं। सब अपनी-अपनी रीति-नीति से जीवन-यापन करते हैं। इससे उनकी राष्ट्रीयता

में कोई अन्तर नहीं आता । "अब अराज इसी व्यवहार को भारत के मुसलमानों, ईसयाइयों, पारसियों ,यहूदियों के लिये भी स्वीकरणीय मानते हुए, इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि "भारत में जो धर्म प्रचलित है उनका मूल स्वर यही है कि मनुष्य समाज में प्रेम से रहे और अपनी आत्मा का विकास करे। राष्ट्र के घटक के रूप में अपना कर्तव्य निभाने में वे (धर्म) बाधक नहीं है।"(पृ०३७) डॉ० अराज उन दोनों सुझावों को उनकी सदिच्छा माना जा सकता है, उनका शुभ संकल्प कहा जा सकता है। सचमुच कितना अच्छा होता यदि ऐसा हो पाता ! डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया अराज एक धर्म-प्राण व्यक्ति हैं । मनसा, वाचा कर्मणा वह आत्मोत्थान की ओर अग्रसर हैं। उनका अध्ययन, चिन्तन-मनन 'हिन्दू धर्म' की उदार मान्यताओं पर आधारित है, उनसे पोषित है। इस पुस्तक के लेख यही तो बताते हैं। डॉ० अराज का कथन है—मैँ जन्म से और संस्कार से हिन्दू हूँ। चिन्तन से मैँने 'मानवता' को 'हिन्दुत्व' से ऊँचा माना है। यदि कोई मानव नहीँ हो सकता तो उसका हिन्दू-मुसलमान, सिख-ईसाई होना व्यर्थ है।"(पृ०७३) वस्तुतः 'धार्मिक-चिन्तन' पुस्तक इसी भावना की संशक्त एवं उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है।

❑ हमने, इस लेख में डॉ० अराज को धर्म के तत्त्व के अन्वेषण में तत्पर एक साधक एक चिन्तक, एक विद्वान् के रूप में पाया है। 'वादे-वादे जायते तत्त्व बोधः'। दर्शन-शास्त्र के चिन्तन में वाद-विवाद को तत्त्व बोध के लिये परमावश्यक बताया गया है। सत्यान्वेषण के, धर्म-चिन्तन के इस साधक को, सम्भव है कभी यह भी बोध हो जाए कि 'हिन्दु धर्म' ही 'मानव धर्म' है, यही मानवता है — सर्वेभवन्तु सुखिनः' का सन्देश देने वाला हिन्दू धर्म ही समूची मानव जाति का धर्म हो सकता है। इस तथ्य को जब गहन अनुभूति के स्तर पर लेखक अनुभव करेगा तब उसे सम्भवतः यह नहीं कहना पड़ेगा कि मैँने 'मानवता' को 'हिन्दुत्त्व'- से ऊँचा माना है।" हिन्दुत्त्व और मानवता तो पर्यायवाची हैं क्योंकि हिन्दू- धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, कोई दल या पन्थ भी नहीं है । यह सार्वकालिक, सार्वजनिक सार्वभौमिक, शाश्वत सनातन आध्यात्मिक मूल्यों का परमोत्कृष्ट, परमोज्ज्वल निदर्शन हैं। विश्वास है कि डॉ० अराज के लिये कभी-न-कभी (शीघ्र ही) यह 'दृष्ट-अनुभूत सत्य' होगा 'जिस सत्य के लिये उनके अन्तःकरण के द्वारा सदा खुले हैं।' एवमस्तु!

सम्पर्क : २१-डी, दयाल बाग, अम्बाला छावनी (हरियाणा)

# ६. आत्मोत्थान की दिशा का प्रस्थान-बिन्दु [१]

—डॉ० सुन्दरलाल कथूरिया

❑ डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' से मेरा परिचय लगभग पच्चीस वर्ष पुराना है। तब वे डॉक्टर की भारी-भरकम उपाधि से विभूषित नहीं थे। अध्यात्म-चिन्तन या आत्म-चिन्तन के प्रति भी तब वे न इतने सचेत थे, न इस दिशा में उनका इतना लगाव ही था, हालाँकि हिन्दुत्त्व एवं भारतीय संस्कृति के प्रति तब भी वे प्रतिबद्ध थे। उनके उस रूप को देखकर कभी-कभी मेरे मन में यह भाव अवश्य पैदा हो जाता था कि कहीं यह व्यक्ति सिद्धार्थ के मार्ग का परित्याग कर किसी दिन गौतम बुद्ध न हो जाए।

❑ 'अराज' मेरे अच्छे मित्र हैं — सुख-दुःख में काम आने वाले। मेरी दृष्टि में, वे परोपकारी जीव और अच्छे इन्सान हैं। उनके सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्ति यह जानते हैं कि वे बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न श्रेष्ठ साहित्यकार हैं, अध्यवसायी, ईमानदार और अत्यधिक परिश्रमशील हैं, साथ ही निष्ठावान और आस्तिक भी हैं। उन्होंने जिस काम को हाथ में लिया, पूरी ईमानदारी, लगन और निष्ठा के साथ पूरा किया। वे सहृदय कवि, वस्तुनिष्ठ लिपि-शोधक, उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार और तत्त्व-चिन्तक तो हैं, एक निष्ठावान अध्यापक, कुशल प्रशासक और सफल बैद्य भी रहे हैं। उनका वैर सम्भवतः किसी से नहीं, पर वे यारों के यार अवश्य हैं।

❑ इस लम्बी भूमिका का आशय केवल इतना ही है कि डॉ० 'अराज' का जीवन-संघर्ष, उनकी जीवन-यात्रा अन्नमय कोष से आनन्दमय कोष की ओर उत्तरोत्तर प्रस्थान की साक्षी है। वे मृण्मयत्व से उत्तरोत्तर चिन्मयत्व की ओर बढ़े हैं। पिछले कुछ वर्षों से वे राममय हो गये हैं और तत्त्व-चिन्तन में लीन हैं। उनके इसी चिन्तन का परिणाम है प्रस्तुत ग्रन्थ- 'धार्मिक चिन्तन'। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा था - 'ध्यायतो विष्षयान् पुसां...'। डॉ० 'अराज' के विषय मे उसी तौल पर मेरा कहना है - 'ध्यायतो-धर्मान् पुसां संगस्तेषूपजायते'। धर्मविषयक विविध पक्षों का चिन्तन करते-करते डॉ० 'अराज' की उनमे आसक्ति हो गयी है और अब वे यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि के अभ्यास से चित्त-वृत्तियों का निरोध करते हुए समाधि की ओर बढ़ रहे हैं। जीवन की किसी अघट घटना ने 'अराज' के जीवन की दिशा बदल

दी अथवा पिछले जन्मों के कर्मों-संस्कारों के फलस्वरूप उनका रुझान अध्यात्म की ओर हो गया, यह तो मैं नहीं जानता, पर उन्हीं के शब्दों में, मैं यह अवश्य कह सकता हूँ कि राम जी उन पर परम कृपालु हैं।

❑ 'अराज' की जीवन-गाथा व्यष्टि से समष्टि और मानव से महा-मानव बनने के प्रयास की गाथा है, ऐसा मुझे लगता है। उनकी जीवन-दृष्टि अत्तरोत्तर परिष्कृत-समुन्नत और ऊर्ध्वगामी हुई है । उनकी समष्टिपरक इस ऊर्ध्वगामी परिष्कृत दृष्टि का मूर्त रूप है 'धार्मिक चिन्तन', जो सभी प्रकार पूर्वाग्रहों से न केवल मुक्त है, वरन् उदार मानवतावादी दृष्टि से समन्वित होने के साथ मौलिकता एवं व्यावहारिकता की छाप भी लिये है। धर्म के क्षेत्र में व्याप्त धर्मान्धता, अमानवीय साम्प्रदायिकता, भेदभाव परकता और ईश्वर के अनेकानेक नामों के आधार पर विकसित विविध मत-मतान्तरों के घटाटोप को विच्छिन्न कर यह ग्रन्थ ईश्वर, ईश्वरीय गुणों और धर्म के वास्तविक स्वरूप की एकरूपता का प्रति-पादन करता हुआ एक बहुत बड़े अर्थ की सिद्धि करता है — सभी धर्मों को अन्यान्य धर्मों को उदारतापूर्वक समझने और विरोध-भाव को त्यागने की प्रेरणा देता है, धर्म के नाम पर होने वाले रक्तपात को जघन्य ठहराता है, प्राणी-मात्र में उसी एक ईश्वर के चैतन्यांश का दर्शन करता है और मानव-मात्र की एकता का प्रतिपादन करते हुए उन्हें वैर-भाव को भुलाकर स्नेह-सद्भावपूर्ण जीवन-यापन की प्रेरणा देता है।'धार्मिक-चिन्तन' के सार-तत्त्व को यदि मानव, मानव-समाज और विविध मत-मतान्तर आत्मसात् कर लें, तो सन्सार के सभी झगड़े स्वतः ही समाप्त हो जाएँ और यह विश्व शान्ति का आगार बन जाए। अशान्ति का मूल कारण है 'व्यष्टि' का विस्तार, और शान्ति का मूल है 'समष्टि-दृष्टि'- और 'धार्मिक-चिन्तन' में एक वाक्य में इसी का प्रतिपादन है।

❑ 'धार्मिक-चिन्तन' में समय-समय पर लिखे गये डॉ० 'अराज' के तेईस चिन्तनात्मक लेख संकलित हैं। 'गायत्री मन्त्र पर विचार' से लेकर 'योग और भक्ति' तक के इस चिन्तन में कई वर्षों का अन्तराल है । दूसरे शब्दों में यह कई वर्षों की अजस्र साधना का परिणाम है। सभी लेख यद्यपि एक ही आत्म-तत्त्व का विविध कोणों-दृष्टियों-पक्षों से विवेचन करते हैं, तथापि आकार-प्रकार और गहराई की दृष्टि से इनमें स्पष्ट अन्तर लक्षित किया जा

सकता है। पुस्तक में संकलित लेखों में आकार की दृष्टि से सबसे छोटा लेख है 'समता-धर्म' (केवल एक पृष्ठ) और सबसे बड़ा लेख है 'ईश्वर में विश्वास' (लगभग ७ - १/२ पृष्ठ)। इन तेईस लेखों में काल की दृष्टि से सबसे पुराना लेख है 'भाषा, धर्म और राष्ट्र'। सन् १९६७ में लिखित यह लेख पहली बार सन् १९८४ ई० में प्रकाशित हुआ था। लेखन प्रकाशन की दृष्टि से अन्य लेख सन्१९७६ से लेकर सन् १९९७ ई० के बीच फैले हैं। 'भाषा, धर्म और राष्ट्र' के लेखन तक डॉ० 'अराज' की दृष्टि में भाषा-चिन्तन प्रमुख था, किन्तु कलान्तर में धर्म और योग-क्षेम चिन्तन बल पकड़ गया।

❑ वेद-त्रयी और हिन्दू-धर्म में गायत्री मन्त्र का बहुत महत्त्व है। इसे गुरु मन्त्र भी कहा जाता है। इस मन्त्र के देवता हैं सविता और इसमें उनसे बुद्धि को सत्कर्म की ओर प्रेरित करने की प्रार्थना की गयी है। अन्य प्राणियों से मनुष्य का वैशिष्ट्य इसी बुद्धि के कारण है, विवेक के कारण है। समाज में मनुष्य के सम्मान का मूलाधार भी सुबुद्धि की प्रार्थना में सभी कुछ आ जाता है, प्रगति के सारे द्वार खुल जाते हैं और योग-क्षेम की प्राप्ति हो जाती है। इस मन्त्र के जाप से सभी कुछ सिद्ध हो जाता है। डॉ० 'अराज' ने 'गायत्री मन्त्र पर विचार' करते हुए उसके वैदिक रूप के साथ लौकिक संस्कृत रूप भी दिया है और शब्दार्थ भी, सर्वजन बोध्य सरलार्थ भी दिया है और अराजकृत हिन्दी पद्यानुवाद भी। इसी के साथ गायत्री मन्त्र की साधना पर प्रकाश डालते हुए उसके जाप की विभिन्न विधियों का उल्लेख करते हुए सब के कल्याण की कामना की है।गायत्री मन्त्र के जाप की सर्वोत्तम विधि है 'केवल ईश्वर की शरण होकर, शेष सब कुछ भूलकर, गायत्री मन्त्र को अन्दर गूँजने दीजिए— समाधि लग जायेगी, सब सिद्ध हो जायेगा, करके देखिए।' (पृ०११) इस प्रकार डॉ० 'अराज' ने गायत्री मन्त्र के महात्म्य पर प्रकाश डालते हुए जन-सामान्य को गायत्री मन्त्र के जाप की प्रेरणा भी दी है। निः सन्देह यह इस पुस्तक का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण लेख है कि जिसे पढ़कर जीवन में आत्मसात् करने वाले व्यक्ति के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हो सकता है।

❑ 'धार्मिक-चिन्तन' शीर्षक ग्रन्थ का दूसरा महत्त्वपूर्ण लेख है 'ईश्वर में विश्वास'। आप ईश्वर को मानें या न मानें, इससे ईश्वर को कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह पहले भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा । ईश्वर के

अनेक नाम हैँ, उसके अनेक गुण हैँ, वह सच्चिदानन्द है, अनादि है, अनन्त है, सृष्टिकर्त्ता, भर्ता और संहर्ता है। वह एक है और सभी प्राणियोँ का पिता है, अतः ईश्वर मेँ विश्वास रखने वाले किसी भी व्यक्ति को प्राणिमात्र से प्रेम करना चाहिए-चाहे उसका धर्म या मज़हब कोई भी हो। धर्म के नाम पर मनुष्य को कष्ट पहुँचाना धर्म की अवमानना करना है। वस्तुतः ऐसे व्यक्यिोँ ने न केवल धर्म-विरुद्ध कार्य किया है, वरन् अनेक व्यक्तियोँ को अनीश्वरवादी भी बनाया है। ईश्वर मेँ विश्वास करने वाले व्यक्ति को ईश्वरीय गुणोँ को अपनाना चाहिए-उसे दयालु और ग़रीब निवाज़ होना चाहिए। इसी स्थिति मेँ व्यक्ति ईश्वर के आनन्द-रूप को समझ सकता है, आनन्दानुभूति कर सकता है। एक उदाहरण द्वारा अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए डॉ० 'अराज' ने ठीक ही लिखा है—"किसी भूखे को भोजन खिलाकर उसे प्रसन्न होते देखकर मन मेँ जो आनन्द होता है उसे वह खिलाने वाला जानता है।...उस योग के क्षण मेँ ईश्वर का आनन्दस्वरूप प्रकाशित हाता है।" (पृ०१६)

❑ 'एक ओङ्कार' मेँ 'ओम्' के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए यह बताया गया है कि 'अ-उ-म्' के योग से बना यह प्रणव ईश्वर के तीन प्रमुख कार्योँ-सृजन, पालन, लयन का व्यंजक है, साथ ही इसका भी कि ईश्वर एक है। 'ओम्' को ध्वनि के रूप मेँ सचित्र (पृ०२२) समझाते हुए डॉ० 'अराज' ने इसके विभिन्न रूपोँ की व्याख्या की है और यह बताया है कि "समझाने के लिए ओं (ओम्) को ही ओंकार (ओङ्कार) कहते हैँ । 'ओंकार जप' इस आदेश का अर्थ है-'ओम्' जप, बार-बार 'ओम्' कह। बार-बार ओंकार-ओंकार कहना उचित नहीँ। वह तो मात्र समझाने के लिए है।" (पृ०२४) डॉ० 'अराज' का यह सुझाव सिक्खोँ को कहाँ तक मान्य होगा, मैँ नहीँ जानता।

❑ 'मानव-समाज' शीर्षक संक्षिप्त-सी पुस्तिका, जो इस ग्रन्थ मेँ एक लेख के रूप मेँ यथावत् संकलित है, का सम्बन्ध 'मानव-समाज' शीर्षक संस्था के गठन से प्रतीत होता है। अत्यन्त लघु आकार की यह पुस्तक (लेखक ने 'मानव समाज' शीर्षक इस संक्षिप्त-से लेख को पुस्तक का अभिधान दिया है।) आदर्श मानव-समाज के गठन मेँ सहायक हो सकती है, बशर्ते कि लोग इसके शाश्वत धर्मोँ-समानता, सद्‌भावना, सेवा, स्वच्छता और संस्कार-का निष्ठापूर्वक पालन करेँ।

❑ विवेच्य ग्रन्थ मे ँ जहाँ दो लेख यजुर्वेद के चालीसवे ँ अध्याय (वेदान्त) 'ईशावास्योपनिषद' के दो मन्त्रो ँ की व्याख्या करते है ँ, वहाँ पाँच-छः लेख प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से गीता/कृष्ण से सम्बद्ध हैँ। 'ईशावास्यम्' तथा 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' मेँ ईश्वर की सर्वव्याप्ति तथा कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा को आधुनिक सन्दर्भोँ मेँ व्याख्यायित किया गया है। लेखक का मानना है कि 'इस जगत् को ईश्वर से वासित कर लेना व्यक्ति और समाज, दोनोँ के हित मेँ है।' (पृ०३४) इसी के साथ वह यह भी मानता है कि 'कर्म ही जीवन की रीढ़ है।..... व्यक्ति कर्म करे, ईश्वर फल देगा, यह धारणा आज भी उतनी ही सत्य हे जितनी युगोँ पहले थी।' (पृ० ४८-४६) डॉ० 'अराज' की शास्त्रानुमोदित उक्त धारणा/मान्यता समाज के बड़े काम की है, उपयोगी है, अतः अनुकरणीय है।

❑ 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे', 'अर्जुन-विषाद-योग-रहस्य', 'जन्म कर्म च मे दिव्यम्', 'गुणत्रय-विभाग योग', 'समता धर्म', 'क्रोध पर विजय', 'पुरुषार्थ चतुष्टयः भारतीय अवधारणा', 'श्रवण भक्ति', योग और भक्ति' शीर्षक लेखोँ मेँ धर्म, योग और श्रेय मार्ग के गूढ तत्त्वाोँ को अत्यन्त सरल, किन्तु सारगर्भित भाषा मेँ व्याख्यायित किया गया है। सांख्य योग, वेदान्त, उपनिषद्, गीता एवं अन्यान्य धर्मग्रन्थोँ के सार-तत्त्व को इन लेखोँ मेँ विद्वान् लेखक ने समाहित कर दिया है।गीता के प्रारम्भ मेँ 'धर्म के क्षेत्र मेँ' और 'करने के क्षेत्र मेँ' के जो दो सूत्र दिये गये हैँ, वे प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से सम्बद्ध हैँ, प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने के लिए विवश है, किन्तु उसके कर्म धर्म सम्मत, विवेकाश्रित होने चाहिएँ, यह बात प्रकारान्तर से गीता के प्रारम्भ मेँ कह दी गयी है और इस प्रकार गीता प्रारम्भ से ही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से सम्बद्ध हो जाती है — उसका सम्बन्ध केवल अर्जुन और महाभारत के ऐतिहासिक युद्ध से नही ँ रहता, वरन् वह मानव-मन मे ँ निरन्तर चलने वाले धर्म-अधर्म, विवेक-अविवेक के महाभारत से सम्बद्ध होकर मानव-मात्र को धर्माचरण का दिव्य सन्देश देकर अपनी इतिकर्त्तव्यता, कालजयिता और चिरन्तन प्रासंगिकता सिद्ध करती है। अर्जुन के विषाद-योग के रहस्य का उद्घाटन करते हुए, उसका सामान्यीकरण डॉ० 'अराज' ने इन शब्दोँ मेँ किया है— "कोई धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र मेँ अर्जुन की तरह विषाद करके देखे तो सही, कृष्ण की गीता का एक एक

शब्द अपने रहस्य की व्याख्या सहित उस पर प्रकट हो जाएगा।"(पृ०५५)

❑ डॉ० 'अराज' का 'धार्मिक चिन्तन' मात्र एक ज्ञानी का नहीं, वरन् एक भक्त का भी हे। उनके इस चिन्तन में आस्था, विश्वास, श्रद्धा, प्रेम आदि का समन्वय है। हुआ यह भी है कि कहीं उनका ज्ञानी रूप अधिक प्रवल हो उठा है और कहीं भक्त रूप । 'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' में उनके ज्ञानी रूप को बखूबी देखा जा सकता है। गीता के 'जन्म कर्म च मे दिव्यम्...' श्लोक में दृढ़ आस्था व्यक्त करते हुए वे बड़े विश्वास के साथ लिखते हैं, "भक्त. ..जब...असंग की समता की स्थिति को स्वयं अनुभव करेगा, तब, उसी क्षण, वह मुक्त हो जाएगा। (पृ.५७) अपने इस कथन को और स्पष्ट करते हुए, 'देहम् त्यक्त्वा' को व्याख्यायित करते हुए वे आगे लिखते हैं, "इसका एक भाव यह भी है कि ऐसी समता की स्थिति को प्राप्त हुआ जीव 'मैं' को 'आत्मा' समझ जाता है, अनुभव करता है तो 'शरीर' को मैं कैसे समझेगा? उसे तो वह अपने से भिन्न पंच-भूत और मन-बुद्धि-अहंकार का बना एक वस्त्र ही मानता है, अतः वह इसमें रहता हुआ भी इससे अलग रहता है, तभी तो मुक्त होता है। मेरे नारायण, इसी क्षण से अपने स्वरूप में ऐसे ही स्थित होने का प्रयत्न कीजिए जैसे श्रीकृष्ण स्थित हैं तो आप 'जीते जी' मुक्ति का आनन्द अनुभव कर सकेंगे। तब यह श्लोक गुरु मन्त्र होकर आपके सब बन्धन काट देगा। आपका कल्याण होगा।"(पृ०५७) स्पष्टतः ऐसे स्थलों पर डॉ० 'अराज' की आस्था एक ज्ञानी और तत्त्व-चिन्तक की सी हो गयी है, उनकी आस्था अन्ध आस्था न होकर, विवेक एवं तर्काश्रित है । भक्त वे हैं, पर ऐसे स्थलों पर उनका ज्ञानी रूप दब गया है और भक्त रूप अधिक प्रबल हो गया है। उदाहरण के लिए 'ध्यान में मेरे अनुभव (१)' शीर्षक उनका लेख देखा जा सकता है। वे लिखते हैं, "लगता है हनुमान जी मुझे उँगली पकड़कर रामजी के दरबार में ले जाते हैं। मैं राम जी को प्रणाम करता हूँ। राम जी आशीर्वाद देते हैं। मैं बैठकर उनके मुख मंडल का सौन्दर्य देखता हूँ। यह सुख उस ध्यान से अधिक बाँधता है, जो अब तक करने का प्रयत्न करता था।"(पृ०६८)

❑ गीता के चौदहवें अध्याय को 'गुणत्रय विभाग योग' के नाम से अभिहित किया गया है। सृष्टि त्रिगुणात्मक है। इसमें तमोगुण, रजोगुण और सत्त्व

गुण विद्यमान हैं। अज्ञान में बँधी होने के कारण जड़ प्रकृति तो तमोगुणी है ही, कुछ मनुष्य भी तमोगुणी जीवन व्यतीत करते हैं और आलस्य, प्रमाद, मोह, निद्रा, विलास, तामसिक भोजन, पर-पीडन आदि में आनन्द का अनुभव करते हैं। इसके विपरीत अधिसंख्य मनुष्य रजोगुण प्रधान होते हैं। उनका अहंकार प्रबुद्ध होता है, वे आडम्बरप्रिय होते हैं। शरीर को सजाने-सँवारने में उनकी विशेष रुचि होती है तथा कंचन-कामिनी उन्हें विशेष प्रिय होती है। उनमें सत्ता एवं अधिकार का मद होता है और इसी के चलते वे आत्म-तत्त्व को भूले रहते हैं। संसार में कुछ लोग सत्त्वगुणप्रधान भी होते हैं। निःसंदेह ये तमोगुणी या रजोगुणी व्यक्तियों से श्रेष्ठ हैं। इनका मन दया, दान, सेवा, तप, पूजा, परोपकार, यज्ञ आदि सत्कर्मों में रहता है, किन्तु माया और अहंकार के वशीभूत हो जाने पर इनके भी भटकने का डर बना रहता है। इसी कारण गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इन तीनों गुणों से रहित होने का उपदेश दिया है। इन तीनों गुणों से रहित होने का आशय इन पर विजय प्राप्त कर आत्म-स्वरूप में स्थित होने से है। श्रेयस्कर होने से यही स्थिति काम्य है, पर यह स्थिति साधना से ही सम्भव है । 'गुणत्रय-विभाग योग' शीर्षक लेख में डॉ० 'अराज' ने इस विषय का सारगर्भित, सुस्पष्ट विवेचन किया है।

❑ धर्म का मूल है प्राणिमात्र में उसी आत्म-तत्त्व के दर्शन करना । गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इसका साग्रह समर्थन किया है तथा समत्व को ही योग की संज्ञा से भी अभिहित किया है। समत्व की बात सुनने में जितनी शोभन और सरल प्रतीत होती है, आचरण और व्यवहार में उतनी ही कठिन है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और ज्ञानी-ध्यानी भी समता धर्म का पूरी तरह पालन नहीं कर पाये हैं। धर्म के क्षेत्र में आज जो ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेदभाव और आडम्बर दिखलाई पड़ता है,, वह इस समता धर्म को सम्यक्रूपेण आत्मसात् न कर पाने के ही कारण है। डॉ० 'अराज' ने अपनी एतद्विषयक चिन्ता को व्यक्त करते हुए निष्कर्ष-रूप में उचित ही लिखा है, "यह मानव-समता-धर्म है, सब को समान समझने का धर्म है, जो बिना सिखाए भी उत्पन्न हो सकता है। होता है। और धर्म के ऊपरी पैरहन से अधिक सशक्त और आवश्यक है।"(पृ०६६) आवश्यक इसलिए कि यही मानवता का मूल मन्त्र है-इसी की

सीढ़ी पर चढ़कर मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य, पण्डित और ज्ञानी बनता है।

❑ काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार मनुष्यता के शत्रु हैं। इनके चंगुल में फँस कर मनुष्य मानवता के महान् आदर्शों से च्युत हो जाता है। इन पर विजय प्राप्त कर मानव केवल महामानव ही नहीं बनता वरन् देवत्व की ओर भी प्रस्थान करता है। डॉ० 'अराज' ने यत्र-तत्र इन पर विजय की बात की है, किन्तु अपने एक स्वतन्त्र लेख में 'क्रोध पर विजय' पर विशेष बल दिया है। क्रोध 'सम्मोह' का जनक है, विनाश का मूल है और इसकी स्थिति प्राणिमात्र में है। इससे बचने के लिए ज्ञान, विश्वास, संकल्प और अभ्यास आवश्यक हैं। क्रोध की लत से इन्हीं चार चरणों से बचा जा सकता है, (पृ०६६)

❑ भारतीय जीवन-दर्शन में पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का विशेष महत्त्व है । इन्हें परम पुरुषार्थ भी कहा जाता है। अर्थ और काम मनुष्य की दुर्बलताएँ हैं, पर इनका धर्मपूर्वक संचय-सेवन ही काम्य है, तभी मनुष्य पशुत्व से ऊपर उठकर मोक्ष की ओर पग बढ़ा सकता है। 'पुरुषार्थ चतुष्टय : भारतीय अवधारणा' में डॉ० 'अराज' ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर सोदाहरण सम्यक् विचार किया है।

❑ ईश्वर के गुणों को अवधानपूर्वक सुनना 'श्रवण भक्ति' है। डॉ० 'अराज' ने स्वाध्याय को भी श्रवण भक्ति का एक प्रकार-'मानसिक श्रवण भक्ति' माना है। (पृ०८३) भक्ति के साथ डॉ० 'अराज' ने 'योग और भक्ति' में योग की भी सम्यक् चर्चा की है। पातंजल योग सूत्र की योग-परिभाषा- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' को उद्धृत कर विद्वान् लेखक ने अनेक व्याख्याताओं द्वारा व्याख्यायित इस सूत्र के अर्थों को दिया है, साथ ही 'योग-शास्त्र' के रूप में गीता की भी चर्चा की है। डॉ० 'अराज' ने योग-साधना में भक्ति और ज्ञान को एक ही समझना चाहिए।' (पृ०६०) उनके ये मन्तव्य बाल की खाल निकालने वाले शास्त्रज्ञ ज्ञानियों द्वारा कितने मान्य होंगे, मैं नहीं जानता।

❑ 'धार्मिक-चिन्तन' में उक्त लेखों के अतिरिक्त 'धर्म-निरपेक्षता', 'मेरे राम की शक्ति (राब्याँ-प्रसंग)', 'श्री कृष्ण और हम', 'शिव पार्वती', 'शरीर की विदाई',

'धर्म और जाति' शीर्षक लेख भी संकलित हैं। इस छोटे से आलेख में इन सभी पर सविस्तर विचार न तो सम्भव है, न अपेक्षित ही। मूल बात यह है कि इन सभी का सम्बन्ध प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से धर्म के किसी-न-किसी पहलू से अवश्य है, निःसन्देह वे धार्मिक-चिन्तन का अंग हैं। राब्याँ-प्रसंग के माध्यम से, हृदय की निश्छलता और करुणार्द्रता को व्यक्त करते हुए जहाँ 'अराज' ने ईश्वर की चामत्करित शक्ति का साक्षात्कार कराया है, वहाँ अपने अन्य लेखों में ज्ञान और चिन्तन की प्रचुर सामग्री भी दी है। 'श्री कृष्ण और हम' में जहाँ लेखक ने कृष्ण के जीवनादर्शों को अपनाने की प्रेरणा दी है, वहाँ 'शिव पार्वती' में पर्वत जैसी दृढ़ संकल्प-शक्ति से शिवत्त्व की साधना की बात कही है । 'शरीर की विदाई' में डॉ० पुरी के इस कथन को जाँचने-परखने के प्रश्न को उठाया है कि 'मैं वैज्ञानिक आधार पर शरीर को भूमि में गाड़ने के पक्ष में हूँ'(पृ०७२) तो 'भाषा, धर्म और राष्ट्र, 'धर्म निरपेक्षता' तथा 'धर्म और जाति' में राष्ट्रीय महत्त्व की कुछ समस्याओं को। इन सभी में डॉ० 'अराज' का मौलिक चिन्तन तो है ही, उनके कुछ ठोस सुझाव भी हैं, जो ग़ौर-तलब हैं। उदाहरण के लिए 'धर्म-निरपेक्षता' में उनका सुझाव है कि "साक्षात्कार इत्यादि में किसी प्रपत्र (फ़ार्म) में 'जाति', 'धर्म' जैसी बातें न भरवाई जाएँ।"(पृ०४३) इसी प्रकार राष्ट्रीय एकता की संसिद्धि के लिए डॉ० 'अराज' ने 'भाषा, धर्म और राष्ट्र' शीर्षक लेख के अन्त में 'हमारा उत्तरदायित्व' शीर्षक के अन्तर्गत कुछ ठोस सुझाव पृ०४० पर दिये हैं । यदि इन सुझावों को हम अपने जीवन में अपना लें तो साम्प्रदायिक असहिष्णुता एवं धार्मिक विद्वेष का स्वतः ही निरसन हो जाए।

❑ कहने की आवश्यकता नहीं कि डॉ० 'अराज'-कृत 'धार्मिक-चिन्तन' आत्मोत्थान की दिशा का प्रस्थान-बिन्दु है। यह आत्मोत्थान की दिशा में बढ़ाया गया एक ऐसा पग है कि इसमें व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण निहित है। इसमें दिये गये चिन्तन-बिन्दुओं को यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने आचरण में ढाल ले, तो प्राणि-मात्र के कल्याण में कोई सन्दहे न रह जाए।

❑ 'धार्मिक चिन्तन' में संकलित लेखों की मूल प्रकृति यद्यपि चिन्तनात्मक है, तथापि न तो इनमें भावुकता की कमी है, न लालित्य की, न वैयक्तिक संस्पर्श की ही – और अपने इस बिन्दु पर ये लेख ललित निबन्धों के निकट

पहुँच गये हैँ। गूढ़ चिन्तन से युक्त होने पर भी इन लेखोँ मेँ न तो नीरसता है, न शुष्कता ही। इनमेँ बुद्धि और हृदय का मणि-कांचन योग है। शास्त्र-सम्मत होने पर भी इनमेँ यत्र-तत्र डॉ० 'अराज' की मौलिकता झलकती है। भक्त-हृदय होने पर भी डॉ० 'अराज' ने न तो किसी बात को अन्ध श्रद्धा के वशीभूत होकर स्वीकार किया है, न इसलिए कि वह किसी बड़े विद्वान् ऋषि-मुनि या शास्त्रकार का कथन है। उनके निर्णय और निष्कर्ष विवेकाश्रित हैँ, तर्क-सम्मत हैँ, आत्मानुभूतिजन्य हैँ। उनकी भाषा सहज, सरल और प्रवाहपूर्ण है। आत्मज्ञान और योग-साधना जैसे कृच्छ और दुरूह विषयोँ को भी उन्होँने अत्यन्त स्पष्ट रूप मेँ समझाया है — हस्तामलकवत्। उनका विवेचन जन-सामान्य की समझ से भी परे नहीँ है — और इसे मैँ उनकी बहुत बड़ी उपलब्धि मानता हूँ। धर्म जैसे गूढ़ विषय को (धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्) उन्होँने दृष्टान्तोँ-उदाहरणोँ तथा स्वानुभूत सत्योँ के माध्यम से स्पष्ट करने की चेष्टा की है,फलतः विषय की दुरूहता कम हो गयी है। डॉ०'अराज' ने 'धार्मिक-चिन्तन' मेँ सत्य तक पहुँचने की सार्थक चेष्टा की है। उनका चिन्तन उदार है, मानवीय दृष्टिकोण से युक्त है, सारग्राही है, वैज्ञानिक और आधुनिकता बोध-समन्वित है। विवेच्य ग्रन्थ केवल पठनीय ही नहीँ, मननीय और आचरणीय भी है। आत्मोत्थान और लोक-कल्याण की भावना से लिखे गये उनके इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के लिए मैँ उनका साधुवाद करता हूँ।

सम्पर्क :
-बी-३/७६, जनकपुरी,
नई दिल्ली-११००५८

# १०. धार्मिक-चिन्तन : एक दृष्टि

—डॉ० रजनीकान्त लहरी

❑ डॉ० अराज की 'धार्मिक चिन्तन' कृति गत दशकों के उनके अनवरत चिन्तन के अभिव्यक्तरूप तेईस निबन्धों का संग्रह है। ये निबन्ध आत्मपरक हैं, इसलिये कि उनमें डॉ० अराज की आत्मा विद्यमान है। ईश्वर, मानव, भाषा और धर्म, कर्म एवं अर्जुन का विषाद, जन्म-मरण, शिव-पार्वती और कृष्ण, धर्म और जाति, योग और भक्ति आदि विविध क्षेत्रों पर उनका चिन्तन इन निबन्धों में समाहित है। वैचारिक परिधि के यह निबन्ध उनके अपने चिन्तन की उदात्तता में रूपायित हुए हैं और सभी निबन्ध अन्ततोगत्वा धर्म की उच्च भावभूमि पर प्रतिष्ठित होते हैं ज़िस भूमि को अराज ने सहज ही आत्मसात् कर लिया है। तो मेरा यह मत कि, वे सभी निबन्ध आत्परक हैं क्योंकि उसमें अराज की आत्मा ध्वनित है, मानो उनकी अपनी अनुभूति ही लेखनी-बद्ध हो चुकी हो, इस दृष्टि से समुचित प्रतीत होता है। अराज अपने सौम्य सरल स्वभाव से जीवन में राममय हो गये हैं और उसी स्रोतवाहिनी में इन निबन्धों का उद्‌गम है। वस्तुतः उनके 'धार्मिक-चिन्तन' में एक अनुभूति प्रवण, धर्मप्राण, निरीह, निर्बोध और उन्मुक्त मन की धड़कन सुनाई देती है।

❑ अराज स्वभावतः संत हैं । जाति-पाति, वर्ग पन्थ और सम्प्रदाय के विभेदों से सर्वथा मुक्त। वे किसी एक के नहीं हैं, सबके हैं, सबके लिये हैं, क्योंकि वे राम के हैं। राम के निकट उन्होंने वह स्थिति पा ली है जहाँ सरस्वती की वीणा की झंकार स्वतः विश्वकामिनी बनकर समग्र ज्ञानराशि को निनादित करती है। उस वैविध्यपूर्ण ज्ञान का एक कण भी मानव के लिये महान है। अराज स्वयं स्वीकारते हैं—

"यों मैं अनन्त ज्ञान के बहुत बहुत छोटे आयाम वाला रह जाता हूँ।"

❑ उनके चिन्तन बिन्दु न तो नये हैं और न मौलिक ही। आत्मा की अनन्तयात्रा के क्रम में उनका सहज अंकुरण होता आया है। गायत्री मन्त्र से योग और भक्ति तक के २३ निबन्धों में उनकी अभिव्यक्ति की विषयवस्तु सनातन है किन्तु अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसारित उनकी साधना से फलीभूत जो

*१. धार्मिक चिन्तन : डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज', एकता प्रकाशन, बी-२बी-३४, जनकपुरी, नई दिल्ली-११००५८, डिमाई, पृ० ६६, पाण्डुलिपि संस्करण (सं०-२, १६६८ ई०).*

आलोक बिखरा है, वह सप्रयास, सप्रयोजन साध्य न होकर सहज स्वाभाविक और संभाव्य बना निबन्धों में प्रकाशवान मिलता है मानो 'इस प्रकाश में किसी का अग्रसर होना मेरा ही अनुसरण है।' अराज की समष्टि भावना इतनी उदात्त हो गई है कि वे 'सर्वे सुखिनः सन्तु' की कामना करते हैं और अपने चिन्तन कण को मानवहिताय समर्पित करते हैं।

❑ 'धार्मिक चिन्तन' का प्रारम्भ गायत्री मन्त्र से हाता है। उनका रचित हिन्दी अनुवाद मन्त्र को सामान्य पाठकों की समझ तक पहुँचा देता है। यह पद्यानुवाद कवि हृदय अराज की विशिष्टता है। भक्त की भावाभिव्यक्ति किसी रूप की मोहताज़ नहीं होगी इसीलिये अराज कवि भी हैं, लेखक, लिपि वैज्ञानिक भी हैं, अरा के निर्माता और नागरी के शोधकर्ता भी हैं। वे गीता, उपनिषद् और रामायण, वेदान्त के व्याख्याता भी हैं। उनका वैविध्यपूर्ण जीवन उनकी भक्तिसाधना की देन है जिससे उनका एक आयामी व्यक्तित्व बहुआयामी निखार पा रहा है। और वे धार्मिक, सामाजिक राष्ट्रीय क्षेत्रों में विचारते, चिन्तन करते मिलते हैं। वे भक्त हैं इसीलिये जीवन की विविध रूप परिधि में सहज ही विचरण कर पाते हैं, वे साधक हैं इसलिये कर्मरत हैं, आज भी कर्मठ हैं। निस्सन्देह वे तपस्वी हैं।

❑ 'धार्मिक चिन्तन' के दो निबन्धों पर मैं यहाँ अपने विचार प्रस्तुत करना चाहूँगा। उनका सातवाँ निबन्ध है 'धर्म निरपेक्षता'। भारतीय राजनीति पर छाया 'धर्म निरपेक्ष' शब्द उनके चिन्तन से ओझल नहीं रहा। एक सन्त की दृष्टि से, समभाव और समरसता की उदात्तता से अराज ने धर्म निरपेक्षता को अपनी दृष्टि से देखा है" हमारी घोषणा में होना चाहिये भारत सम्प्रदाय निरपेक्ष राज्य है।... सरकार को सबसे पहले यह सिद्ध करना होगा कि वह स्वयम् सम्प्रदाय निरपेक्ष है।" वास्तव में निहित स्वार्थ, वोट की राजनीति और दावपेच की दलनीति ने जिस शब्द का बलात्कार किया है वह है 'धर्म निरपेक्ष'। इसकी मनचाही और मनमानी व्याख्याएँ करके देश को गुमराह किया गया है। सरकार की ईमानदारी का एक उदाहरण देता हूँ — मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने सुप्रीम कोर्ट में १९९४ (९७ एस सी एस ५७९) में संस्कृत को चयनित विषय सूची से हटाने के पक्ष में जो तर्क दिया था वह था कि संस्कृत को शामिल करना सेक्यूलरवाद के विरुद्ध होगा। यदि संस्कृत को शामिल किया गया तो

अरबी और फारसी को भी शामिल करना होगा। सुप्रीम कोर्ट ने अपने निर्णय में कहा कि विधान की धारा ३५१ में माना गया है कि संस्कृत को प्रोत्साहन दिया जाय। हिन्दी को प्रोत्साहन के लिये, जहाँ आवश्यक हो, शब्दावली के लिये संस्कृत का आधार लिया जाय। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि अपनी सांस्कृतिक परम्परा के पोषण के लिये भी संस्कृत जरूरी है। अतः संस्कृत को चयनित विषय सूची में रखा जाय और यह स्थान अरबी और फारसी के लिये अमान्य है । इससे स्पष्ट होता है कि हमारे शासक संस्कृत को सेक्यूलर के विरोध में देखते हैं । इतना ही नहीं, वे तो उसे परम्परा का पोषक भी नहीं मानते. तथा अरबी और फारसी जैसी नितान्त विरोधी भाषा को संस्कृत के समकक्ष बिठाने में 'सेक्यूलर इमेज' पाते हैं। 'धर्म निरपेक्ष' की आड़ में भारतीय संस्कृति और परम्परा के प्रति कितना अन्याय हो रहा है इससे क्षुब्धजन इस शब्द की सही व्याख्या की माँग करते हैं । भारतीय जीवन में धर्म निरपेक्षता सम्प्रदायवाद और वर्ग एवं पंथ के आग्रहों से ऊपर उठकर धर्म समभाव में देखी गई है।

❑ भक्त प्रवर डा० अराज आत्मसाक्षात्कार की कान्ति में आत्मवत् सर्व भूतेषु को छू रहे हैं और सभी को मानवता की स्वर्णिम आभा में प्रफुल्ल देखना चाहते हैं। व्यक्ति किसी भी वर्ग, जाति, पंथ या सम्प्रदाय का हो, अन्ततोगत्वा मानव है जिसमें जीव का जो प्रकाश है वह सबमें एक-सा है अतः सभी उस परम पिता के पुत्र हैं। एक समान हैं। अराज की दृष्टि में सभी मानव हैं और सभी नागरिक समान हैं।

❑ समानता और एकरूपता के लिये डा० अराज के अपने सुझाव हैं। वे ऐसे प्रयासों का निषेध करते हैं जिनसे विभाजन बढ़े, यथा नाम के प्रारम्भ या अन्त में जातिवाचक या सम्प्रदाय सूचक नाम का जोड़ा जाना। यह उत्तर प्रदेश और बिहार में ज्यादा होता है। गुजरात और महाराष्ट्र में व्यवसाय जनक या ग्राम-प्रान्तर-आधारित नाम जोड़े जाते हैं जो सभी वर्ग पंथ सम्प्रदाय के लोगों के लिये हैं यथा पटेल, चिन्चोलकर। इसी प्रकार डा० अराज सभी नागरिकों के लिये सामान्य संहिता की अपेक्षा करते हैं। एक-सा कानून सभी पर लागू हो। विवाह प्रक्रिया भी एक-सी हो, धार्मिक व्यवस्थायें, पर्व आदि के क्षेत्र में स्वतन्त्रता हो किन्तु उसमें विषमता न हो और समाज की निर्णायक

भूमिका बनी रहे। समाज रचना के सत्यपथ से भ्रष्ट होकर शासन सत्ता पर जमे रहने के लिये देश में एक समान कानून संहिता लागू नहीं की गई जिससे सामाजिक विद्वेष और विभेद बढ़ते जा रहे हैं। शायद इसीलिये डा० अराज ने शासन को इस दिशा में ईमानदार रहने का संकेत किया है। तीसरी बात जो डा० अराज कहते हैं वह है राजनैतिक दलों के द्वार सभी नागरिकों के लिये खुले रखने की। आज भी ऐसा कोई दल नहीं है जिसमें सभी जातियाँ या वर्ग के लोग न हों या उन पर कहीं प्रतिबन्ध लगा हो। व्यावहारिक स्थिति कुछ भिन्न है। अंग्रेजी राज्य में मुस्लिम लीग को केवल मुसलमानों की संस्था माना जाता था और काँग्रेस के लिये प्रचार था कि वह हिन्दुओं की है। वास्तविकता इससे भिन्न थी। काँग्रेस में सभी पंथ एवं वर्ग के लोग थे। मुसलमान जो थे वह कम प्रभावी थे, विशेषकर मुसलिम लीग के मुकाबले में। यही हाल आज भाजपा का है जिसे साम्प्रदायिक कहा जाता है। यह मात्र वोट की गन्दी राजनीति है जो 'सेक्यूलर' शब्द को फुटबाल की तरह अपने हित में उछालती मिलती है। इसी प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति में अभिन्नता देखने वाले डा० अराज कहते हैं, 'किसी सम्प्रदाय के लिये विशेष सुविधा की बात को उठने ही न दिया जाय।' वे आरक्षण की बात नहीं करते। उनके लिये सभी आरक्षित हैं। किसी न किसी माध्यम से वह परम शक्ति है जो दीन हीन वित्तहीनों की रक्षा करती है, जरूरत है भक्तिसागर में समाज को अवगाहन कराने की। तभी डा० अराज की कल्पना भी साकार बनेगी कि 'जिसकी आय ३००० रु० मासिक से कम हो, उसके बच्चों को विद्यालय की पुस्तकें मुफ्त मिलेंगी।'

❑ डा० अराज जिस समाज रचना की कल्पना करते हैं उसकी नींव में धर्माचरण है, सर्वधर्म समभाव है। वह एक वृहत मानव धर्म है जहाँ कोई दुखी और दीन नहीं होता क्योंकि सभी परस्पर धर्माचरण से पालित रहते हैं। धर्म बाँटता नहीं, जोड़ता है, धर्म गिराता नहीं उठाता है और धर्म बाह्यडम्बर नहीं, आत्मतत्त्व है, आत्मसाक्षात्कार है। यम और नियम का पालन है। पूर्वाग्रह, प्रतिबद्धता, रागद्वेष का परित्याग है। तितिक्षा, प्रत्याहार और उपरति के अंगीकरण से हम 'सेक्यूलर' में निहित भारतीय तत्त्व की सही परख कर सकेंगे, ऐसा डा० अराज का मत है।

❑ डा० अराज का दसवाँ निबन्ध 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' सामाजिक समरसता की दिशा में प्रेरणा दायी लेख है जिसमें गीता के उपदेश को मानव जीवन का पथ प्रदर्शक माना गया है। कोई भी 'सेक्यूलर' भारतीय ऐसा नहीं है जिसने गीता को प्रेरक न माना हो। अनेक भाष्य, टिप्पणियाँ और व्याख्याएँ होने पर भी, उसका संदेश व्यापक और गहरा है और जीवन को सन्मार्ग की ओर ले जाने में सक्षम है। डा० अराज कहते हैं' प्रत्येक व्यक्ति का जीवन कर्ममय होता है ही अतः वह कुरुक्षेत्र है ।' उसे धर्म के अनुसार देखा जाय तो वह संगतिपूर्ण होगा। यह धर्म है जो पशुत्व से मानवत्व की ओर ले जाता है और हममें विवेक और वैराग्य, अनन्यता और तितिक्षा की ज्योति जगाता है। डा० अराज गीता के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं और इसे 'श्रेयस्' की ओर ले जाने वाला बताते हैं।

❑ डा० अराज के निबन्धों में एकसूत्रता है । वे मानव विकास के सूत्रों में बँधे हैं। मानव उत्थान, मानवता का विकास अर्थात् आत्मसाक्षात्कार और भक्तिभाव उनका केन्द्र बिन्दु है। अहं ब्रह्माऽस्मि की इस अनुभूति में सूत्रित सभी निबन्धों में डा० अराज प्रतिबिम्बित मिलते हैं और उनका स्वांतः सुखाय सर्वासुखाय हो जाता है । साधारण बोधगम्य भाषा में रचित यह निबन्ध संग्रह अन्धकार से प्रकाश की ओर मार्ग प्रशस्त करने वाला है । और इस प्रकाश में तब आत्म प्रकाश होता है, उस अनुभव में पाठक कहीं न कहीं जाकर डा० अराज की आत्मा के तारों से अपने को जुड़ा पाता है।

सम्पर्क :
८८/५३५, प्रेम नगर
कानपुर-२०८००१

# ११. एक आदर्श मानव (!) संहिता (श्रीरामादर्श)

—डॉ० बलदेव वंशी

❑ आज, जबकि विश्व के अग्रणी चिन्तकों - बौद्धिकों ने, विशेष रूप से पाश्चात्य विचारधारा के अग्र धावकों ने ईश्वर के मरण की घोषणा के बाद साहित्य-कला-कविता के मरण की, अर्थहीन हो जाने की अन्तिम घोषणा भी कर दी है, तो भारत में राम - यानी भाव, भावना, अनुभूति और संवेदना की दिशा में और भी उदग्रभाव से लोग उठ खड़े हुए हैं। संकट जितना गहराता जा रहा है, राम उतना ही निकट आता जा रहा है। क्या यह कोई गलतफहमी या खुशफहमी मात्र है? या हारे को हरिनाम है? या कोई वास्तविकता है? कोई गहन वैचारिक-भावात्मक आधार, -जिसे आजमा लिया गया है। जो सचमुच में हमें भवसागर से पार उतार सकता है? पश्चिम ही क्यों भारत के अतीत में हिरण्यकश्यप, रावण, कंस आदि ऐसे कई बौद्धिक सर्वशक्ति सम्पन्न सम्राट हो चुके हैं, जिन्होंने स्वयं को भगवान या ईश्वर मनवाने और ईश्वर को अपने अधीन होने के विचार रोपित किये। इनकी निरंकुशता का अर्थ भी कमोबेश ईश्वर के मरण की घोषणा ही था। फिर नास्तिक सम्प्रदायों की स्थापनाएँ भी इसी दिशा क्षेत्र की निर्मितियाँ ही हैं। पश्चिम इस क्षेत्र में भी यों पिछड़ा हुआ ही है। भारत ने इन मार्गों को रौंद कर— आज़मा कर छोड़ दिया है। रद्द कर दिया है। यह कोई नई घटना - स्थापना नहीं है, भारत के लिए। हां, उन भारतीयों के लिए सर्वथा नई, चौंकाने वाली हैं ऐसी घोषणाएँ, जिनके संस्कार और संस्कृति मात्र देह, मिट्टी, आदि पंच महाभूतों तक सीमित है। भावात्मक, आत्मिक, परमात्मिक आकाश की सूक्ष्म ऊँचाइयाँ — आनन्द की परावस्थाएँ उन के भाग्य में नहीं हैं। देह और आत्मा (चेतना) बुद्धि और भाव का द्वन्द्व कोई आज का नहीं है। बुद्धि, विचार, धारणा का अपना तर्कशास्त्र और विज्ञान है। गहरे भावों से ही बड़े विचारों का जन्म होता है।

❑ शिव, सृष्टि के आदि-अनादि देव हैं। सृष्टि के महत् आठ तत्त्व एवं मूल क्रियाएँ शिव के आठ रूपों के प्रतीक हैं— उग्र, रूद्र, ईशान, सर्व, महादेव,

१. रामादर्श काव्य' लेखक : डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' : एकता प्रकाश नं०-बी-२-बी-३४, जनकपुरी, नई दिल्ली-११००५८, पृ०सं०६४, पेपर बैक मूल्य : रू० ५०/-

भव आदि। इन में भव-धरती पर जल-रूप है, जलीय, सारी सृष्टि-इस धरती पर भव है। वैज्ञानिक कथनानुसार धरती पर दो तिहाई जल है और एक तिहाई मिट्टी है। यही अनुपात मनुष्य आदि प्राणियों की देह में भी है- जल और मिट्टी का। मनुष्य, सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने के कारण- विवेक-बुद्धि-भाव संवलित होने से, इस सारी सृष्टि का लघुतम रूप भी है। यथा पिण्डे तथा ब्रह्मांडे, यथा ब्रह्मांडे तथा पिण्डे, कबीर इस तथ्य को निम्न प्रकार से कहते हैं—

*इस घट अन्तर बाग बगीचे, इसी मे सिरजन हारा।*
*इस घट अन्तर सात समुन्दर, इसी मे नौलख तारा।*
*इस घट अन्तर पारस मोती, इसी मे परखन हारा।*
*इस घट अन्तर अनहद गरजै, इसी मे उठत फुहारा।*
*कहत कबीर सुनो भाई साधो, इसी मे साईं हमारा।*

❑ जिस प्रकार धरती का केन्द्र सूर्य है, वैसे ही मानव की देह का केन्द्र उस का मन है। कबीर इस घर-देह में ही सब को- बाह्य प्राकृतिक विस्तार को देखते हैं। वस्तुतः वेदों और उपनिषदों का ज्ञान इस धरती पर सूर्य (अग्नि) और उस की ऊर्जा से पनपे जीवन के विस्तार का प्रथम उल्लेख है । वैज्ञानिक इस धरती पर जीवन आरम्भ को 'बिग-बैंग' - मानते हैं, अर्थात् - महानाद! इसे भारतीय अध्यात्म में आदि शब्द - बह्म या ओंकार माना जाता है। "एक नूर तैं सब जग कीया" का संदेश भी इसी सत्य को स्थापित करता है।

"प्राणो वै अर्क" (शतपथ ब्राह्मण १०/४/७/२३)
अर्थात् प्राण ही सूर्य है । या फिर —
"याऽसावादित्ये पुरुषः सोऽहम्" (त्रयी उपनिषद ६/३५)
अर्थात् जो सूर्य है सो मैं हूँ।

❑ कहना न होगा कि आज के उक्त जिन चिन्तकों ने जीवन-विकास का उक्त ज्ञान, सोच और समझ गँवा दिया है, उन के लिए ही सर्व व्यर्थ , मृत या निष्प्राण है, क्योंकि वे स्वयं ही इन महत् तत्त्वों, सन्दर्भों से कट गये हैं- इसी के फलस्वरूप मृत एवं निष्प्राण हैं। क्योंकि सृष्टि के महत् तत्त्व मिट्टी, जल, अग्नि, वायु आकाश (शून्य) यदि आज भी विद्यमान हैं तो भव-भाव-भावना, भवजल, भवसागर भी जीवित हैं, प्राणवान हैं। भव से भाव का विकास

है। मनुष्य की देह में जल तत्त्व का केन्द्र हृदय माना गया है। इस हृदय में तरंगायित स्पन्द — पर दुःख से उत्पन्न करुणा-जल में लहर उत्पन्न होती है — जो भाव रूप है। इसी से अनुभव, सम्भव, विभव-वैभव, अनुभाव, संचारी भाव आदि का समूचा संसार ही बसा लिया गया है। 'भवसागर पार करना' या 'गंगा नहा जाना'----- आदि मुहावरों या कथनों का पुनः यही अर्थ है कि अमुक व्यक्ति अपने भाव-क्षेत्र में या परिधि में स्थित प्राणियों (परिवार जनों आदि) के प्रति दायित्व-मुक्त हुआ। भारत इन अर्थों में, एक शब्द में कहें तो, समूचा 'भाव' है। समूचे जीवन-विस्तार को इसी-भाव-की आँख से देखता है। भाव कीं आँख ही अध्यात्म की आँख है। परमात्मा को देखने की आँख है। आत्मभाव से समूची सृष्टि को लेने वाले भारतीयों का भगवान भी इन अर्थों में सर्वथा विशिष्ट है। वह स्वयं अंशी भी है और अंश भी है। इन दोनों के मरण से ही, वास्तविक मरण माना जायेगा । कुछ (मात्रा) बौद्धिकों की चौंकाऊ घोषणाएँ-सिद्ध तात्त्विक भावात्मक तर्कों पर आधृत सत्यों को (जो अपेक्षाकृत अधिक गहरे-व्यापक-विराट हैं) निरस्त नहीं कर सकतीं। इन गहरे अहसासों से रसे-हुए मनुष्य मरी हुई मिट्टी के बने चलते-फिरते खिलौने नहीं परस्परता की पीड़ा में नाभिनाल बद्ध जीवंत वेदना-स्यूत (विद्-वेद-वेदना) सजग मानव हैं।

❑ इस पृष्ठभूमि पर अब हम 'राम' और इसके भाव-विस्तार को तथा संसार जीवन को देखना चाहेंगे। 'राम' आज के मनुष्य को इस रूप में सहायता कर सकते हैं, यदि वह समाज और मानवमात्र में भरोसा रखता हो, यदि और भी विकसित संवेदनाएँ हों उसके पास प्राणीमात्र और प्रकृति-परिवेश-व्यापक-सार्वभौम अस्तित्त्व में विश्वास हो। आखिर जैविक विकास के तर्क को तो वह झुठला नहीं सकता। इस धरातल पर सब परस्पर चैतन्यसूत्र में सम्बद्ध हो जाते हैं। तब, राम एक वृहत्तर, जैविक, समान धरातल वाला आधार बन जाते हैं। राम, तत्त्वरूप में सृष्टि में व्याप्त हैं। अणु-परमाणु में विद्यमान हैं।

❑ भाव-भक्ति में डूबे हुए भारतीय अपने लिए बड़ा भरोसा पाते हैं 'राम' में। इतना अवश्य हुआ है कि राम और उसके पराक्रमों को प्रतीकार्थों में खोला, देखा, रचा जाने लगा है।

❑ श्री रामादर्श (काव्य) भी उसी परम्परा में एक प्रयास है। आत्म-तोष, श्रद्धा, भक्ति और भाव की यात्रा है । ब्रह्म, माया, जीव, जगत, निद्रा, जागृति आदि की परम्परिक अवधारणाओ को ले कर राम-कथा के वर्णनों में नयी उद्‌भावनाओं से ताज़गी के अहसास जगे हैं रामादर्श काव्य मे। अराज ने बाल राम, युवा राम, तपस्वी राम, प्रेमी राम और वीर राम के पाँच सर्गों में अपनी पुस्तक को सीमित रखा है। अराज ने राम-सीता-शिव और हनुमान के सम्बन्ध मे लिखा है — राम तत्व —

❑ "राम के तीन अर्थ हैं १. राम रमे हुए हैं। वे सर्वत्र व्यापक हैं। २. राम रमणीय हैं - सुन्दर, रसमय, संगीतमय हैं। ३. राम ही 'आराम' हैं। विश्राम है, परम शांति है।

सीता तत्त्वः सीता जी राम की शक्ति है, वे माया है जो विश्व की रचना करती हैं। वे, श्री राम और श्री शिव वस्तुतः एक ही हैं। प्रभु के सर्व हितैषी, सर्व कल्याणकारी भाव को शिव कहते हैं। इत्यादि।

❑ इन्हीं उक्त तीन आधारों को - इन की प्रतीकात्मकता को विस्तार दिया है पूरे काव्य मे । मंगलचरण के बाद राम के वर्णन मे, उन्हे कण-कण में व्याप्त माना गया है जैसे पाटल-दल में खुशबू हो और मन तथा इन्द्रियाँ प्रभु को ऐसे ही देखने में असमर्थ हैं जैसे आँखें गन्ध को देखने में असमर्थ होती हैं। और असुर वह है जो लोभ-स्वार्थ में पड़ कर किसी अन्य का भाग चुराता है, मर्यादा को लाँघता है। और रावण उस प्रवृत्ति का नाम है, जो अपनी मति और मत या निर्णय को ही ठीक माने। ऐसे में "हर स्वतन्त्र चिन्तन का हामी। उस से तब निर-आस हो चला।"

❑ पुनः 'युवा राम' सर्ग में आधुनिक अर्थ संगतियाँ भरते हुए अराज लिखते हैं—

*"कहने को तो अवधपुरी मे। प्रकट हुए वे एक राम हैं।*
*किन्तु सभी जन अपने-अपने। साथ सदा प्रभु को पाते हैं।।*

❑ और सूत्र रूप में रामकथा की प्रमुख घटनाओं का वर्णन करते हैं। वस्तुतः पृष्ठ १७ से आरम्भ कर के पृ० ६१ पर यह काव्य समाप्त होता है।जिसमें राम की पूरी कथा कह दी गयी है। अराज ने दोहा और राम छन्द में यह

कथा कही है। सहज सरल भाषा का अधिक ध्यान रखा गया है और संक्षेप में राम कथा का मर्म, वर्तमान सोच-विचार के धरातल पर हृदयंगम कराने का प्रयास है । कम समय में, सम्पूर्ण काव्य में भक्तिरस का आनन्द उपलब्ध कराने और भावना, संवेदना, विचार, आचार की व्यावहारिक उलझनों से पार पाने का उत्तम साधन उपलब्ध कराने के लिए अराज की प्रशंसा भक्त लोग अवश्य करेंगे।

दिनांक : १७-११-६७

सम्पर्क :
ए-३/२८३, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-६३

# १२. समाज धर्म के लिये और धर्म समाज के लिये

-डॉ० ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश'

❑ 'समाज धर्म के लिये और धर्म समाज के लिये' - यही सार है अराज की कृति 'धार्मिक-चिन्तन' का। सम्भवतः यही मूल प्रतिपाद्य है जिसकी छाया विभिन्न शीर्षकों-उपशीर्षकों में बिखरी पड़ी है।

❑ इधर कुछ वर्षों से साहित्यकार अराज चिन्तक अराज बन गया है। इसका यह अर्थ भी नहीं लिया जाना चाहिए कि पहले उनके साहित्य में कोई चिन्तन नहीं था। मन्तव्य केवल इतना है कि अब वे चिन्तन को शुद्ध चिन्तन के रूप में ही सीधे प्रस्तुत कर रहे हैं। लगता है उनका जीवन और साहित्य राममय हो गया है और वे धीरे-धीरे वैराग्य और भक्ति में डूबना चाहते हैं। फिर भी, एक सुचिन्तक के नाते उनका मन, उनका अध्ययन समाजोपयोगी है। न वह कोरा धर्म चिन्तन है, न मात्र दार्शनिक ऊहा-पोह; बल्कि इन सबके समुचित योग से साधा गया जीवनोपयोगी चिनतन-मन्थन है।

❑ लेखक ने जिन विषयों या बिन्दुओं को उठाया है वे, ऊपरी रंग में धार्मिक और आध्यात्मिक हैं। स्थान-स्थान पर धर्म ग्रन्थों से छोटे-बड़े उद्धरण भी हैं, ख़ासकर गीता से, सूत्रों से, कवि शिरोमणि तुलसीदास से, किन्तु चिन्तन की दिशा, उन शीर्षकों से निसृत विचार-सरणि जीवन की ओर उन्मुख है। जीवन को लेखक ने सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में देखा-परखा है। धर्म या धार्मिक-चिन्तन को भी लेखक समाज-हित के आलोक में देखता है। वह चिन्तन जिस व्याख्या के साथ प्रस्तुत होता है, वह मनुष्य को एक अच्छे, स्वस्थ जीवन-यापन की प्रेरणा देता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' के जन-कल्याण की अनुगूँज पूरी पुस्तक में किसी न किसी रूप में सुनाई पड़ती है। बातें बहुत साधारण प्रतीत होती हैं, किन्तु ग़ौर से देखें तो बड़े महत्त्व की हैं। कह सकते हैं कि बेहतर जीवन का ख़ाका है। 'आय का दशमांश दान में दें,' 'सब प्राणियों पर दया करें,', 'सभी में एक आत्मा का निवास मानें' आदि बेशक धार्मिक आदेश हों किन्तु अन्ततः स्वस्थ-सुन्दर जीवन के दिशा-निर्देश हैं। अराज ने इन्हें पुनः-पुनः रेखांकित किया है। कुछ धर्म के घेरे से बाहर निकली अत्यन्त साधारण बातें भी हैं जैसे सरकारी फार्मों में धर्म का खाना न भरना पड़े, लोग अपने नाम के आगे उपनाम

के रूप में जाति का नाम न लिखें आदि। ये बातें बहुत से झगड़े-फसाद को मिटाने में सहायक हो सकती हैं। इन्हीं बातों के विवाद आज समाज को खोखला किए दे रहे हैं। इस सन्दर्भ में लेखक ने भाषा के मसले को भी लिया है। उसका कथन है कि भाषा किसी विशेष धर्म या धर्म ग्रन्थ से जोड़ कर नहीं देखी जानी चाहिये। ऐसा नहीं है कि संस्कृत का सम्बन्ध केवल हिन्दुओं से, बाइबिल का सम्बन्ध अनिवार्यतः अंग्रेजी से तथा पंजाबी का सम्बन्ध केवल सिक्खों से है। धर्म-ग्रन्थ किसी भी भाषा में लिखे-पढ़े जा सकते हैं, और अनुवाद की राह उन्हें किसी भी भाषा में प्रस्तुत किया जा सकता है। भाषा का सम्बन्ध मजहब से जोड़ना अन्ध-दृष्टि है। भाषा तो बहता नीर है जो हर प्रान्त से होकर बह सकता है और हर जाति के लोगों की ज्ञान-पिपासा शान्त कर सकता है। दुर्भाग्य से, भारत में भाषा का प्रश्न बहुत संवेदनशील रूप ग्रहण कर गया है और प्रायः इसे राजनीतिक रंग देकर उलझा-भड़का दिया जाता है। 'धार्मिक-चिन्तन' में भाषा को भाव और भावना से जोड़कर एक उबलते प्रश्न को बड़े सौम्य तरीके से सुलझा दिया गया है। लेखक का दृढ़ विश्वास है कि धर्म, भक्ति आदि की सार्थकता इन्सान को बेहतर इन्सान बनाने में है जो अत्यन्त ही स्वस्थ, सुखकर, और जन हितैषी दृष्टि का परिचायक है।

❑ विवेच्य पुस्तक लेखक के स्व-चिन्तन का परिणाम है। प्रतीत होता है कि बहुत सी सामग्री स्वानुभूत भी है। चिन्तन-मनन और स्वाध्याय की झलक लेखन में जगह-जगह उपलब्ध है। लगता है अनुभव से चिन्तन आया है और चिन्तन ने नए अनुभव के लिए उत्प्रेरित किया है। अराज जी ज़िन्दगी को नित नए रंगों में ढालने के आदी हैं। साहित्य से अध्यात्म की ओर यात्रा इसी सोपान से गुज़र कर आई होगी।

❑ विभिन्न सिद्धान्तों, कथनों, आप्त-वाक्यों की लेखक अपनी व्याख्याएँ प्रस्तुत करता है जो कहीं-कहीं मौलिक और नवीन लगती हैं जैसे शिव-पार्वती की व्याख्या है या 'ॐ' की व्याख्या है । लगता है लेखक ने न केवल ग्रन्थों को पढ़ा है बल्कि रुक कर उन पर विचार-मनन भी किया है। एक हद तक ग्रन्थों, सूत्रों, सिद्धान्त-वाक्यों की नवीन व्याख्याएँ आनी चाहिएँ; उन पर पुनर्विचार होना चाहिए किन्तु ये नवीन व्याख्याएँ आलोचना के लिए

खुली हों। पुनर्चिन्तन से नए पक्ष सामने आते हैं किन्तु उन्हें स्थापित और प्रतिष्ठित भी करना होता है। इस अर्थ में तो लेखक का प्रयास स्तुत्य है कि वह मनन-चिन्तन से कुछ नया देना चाहता है किन्तु शास्त्रार्थ में प्रमाण भी जुटाना पड़ता है। कई स्थलों पर जो लेखक कह रहा है उसके लिए यथेष्ट प्रमाण की अपेक्षा बनी रहती है । फिर भी लेखक-प्रयास उत्साह वर्धन का अधिकारी है।

❑ कहीं-कहीं लेखक 'घोर' आध्यात्मिक हो गया है और तत्त्व चिन्तन के किञ्चित् रहस्यमय लोक में उतर गया है। ऐसे स्थलों पर साधारण पाठक कुछ भ्रमित-चकित-सा रह जाता है। उसे लगता है कि लेखक की जिस डोर को पकड़ कर चल रहा था, वह एकाएक कहीं लुप्त हो गई ("...मन की रंगशाला में पूरी लीला अवतरित होती देखता तो है ही, वह स्वयं उस का अंग होकर उसे भोगता भी है । वह भरत होकर राम के चरणों में लुण्ठित होता है। राम उसे अपने अंग से लिपटा लेते हैं। भावक को ऐसा अनुभव होता है जैसे राम ने उसे ही लिपटा लिया। महारास हो रहा है। पाठक राधा या ललिता होकर महारस का अंग हो गया है। तब स्थूल शरीर की दृष्टि से वह विदेह हो जाता है किन्तु उसका चित्त अपनी वृत्ति से कथानक के अणु-अणु में विद्यमान होता है, तदाकार होता है। सांसारिकों की तुलना में वह उस क्षण, उन क्षणों के लिए और अनुभूति की गहनता के अनुकूल बाद में मुहुर्मुहुः स्मरण कर रोमांचित, गद्‌गद्, तदाकार हुआ आनन्द सुरसरी में डूबता-उतराता है।" पृ०८३)

❑ सामान्यतः लेखक अपनी बात को बहुत खोलकर, समझा कर कहता है। बेशक लेखक ने अनेक स्रोतों से कण-कण चिन्तन-सामग्री खेजी-बीनी है किन्तु उसे संश्लिष्ट रूप देकर ग्राह्य और गम्य बनाया है। व्याख्यात्मक होने से उसकी शैली सरल, सुगम और सहज है । भाषा भी तद्‌वत् है। किन्हीं-किन्हीं प्रसंगों में उसकी शैली उपदेशात्मक और उद्‌बोधनात्मक है। अराज जी ने भक्ति और योग जैसे गूढ़ विषय को भी लिया है।

❑ लेखों मे आवृत्ति की प्रवृत्ति है। ऐसा शायद इसलिए है कि लेखक बार-बार उसी तथ्य को, बार-बार उसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना चाहता है। बार-बार

वह भेद-भाव की निन्दा करता है। वर्ण और जाति में अन्तर करते हुए ऊँच-नीच की भावना पर चोट करना चाहता है, धन लोलुपता की निस्सारता दिखा कर उससे समाज को विरत करना चाहता है, शान्ति और वैराग्य को जीवन के अन्तिम मूल्यों के रूप में स्थापित करना चाहता है। आज के युग में इनकी कितनी आवश्यकता है- इसे हर चिन्तनशील व्यक्ति महसूस करता है। मनुष्य के मानवीय रूप का क्षय दिनों दिन होता चला जा रहा है। उसे रोक कर पुनः दिशा-नियोजन करना मानव-कल्याण का कार्य होगा। आशा है प्रस्तुत पुस्तक इस पुनीत कार्य में अपनी भूमिका निभाएगी।

सम्पर्क :
सी ४ बी (पॉकेट १३)/११०,
जनकपुरी, नई दिल्ली-५८

# १३. 'अराज' का धर्म-दर्शन

—डॉ० मदन लाल कपूर

❑ 'अराज' कवि हैं, कहानीकार हैं, भाषा शास्त्री हैं साथ ही वे धार्मिक चिन्तक भी हैं। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व आध्यात्मिक है, अतएव उनका चिन्तन भी आध्यात्मिक है। वे उपनिषदों की आध्यात्मिकता को धार्मिक सिद्धान्त और कर्त्तव्य का आधार मानते हैं। वे 'पूर्व' और 'पश्चात्' के व्यर्थ झगड़े में नहीं पड़ते। वे उपनिषदों की आध्यात्मिकता को सनातन मानते हैं इसी लिए वे सारे आध्यात्मिक मतों को सनातन समझते हैं और उन्हें काल के क्रम से मुक्त करते हैं। आध्यात्मिकता जिस रूप में दृष्टिगोचर हो, उन्हें प्रिय है। वे रामकृष्ण परमहंस की भाँति प्रत्येक आध्यात्मिक अर्चाविधि को मुक्ति का साधन मानते हैं। उनका सम्प्रदाय तो आध्यात्मिकता है। उसे नाम देकर अपने प्रिय को सीमित नहीं करना चाहते। वे मीर तकी मीर की तरह कह सकते हैं —

मीर के दीनो मज़हब को अब
पूछते क्या हो उनने तो।
तश्का खींचा दैर में बैठा
कब का तर्के इस्लाम किया।।

('मीर' के विश्वास और सम्प्रदाय को अब क्या पूछते हो, उन्होंने तो तिलक लगा लिया और मन्दिर में जा बैठे, कब का इस्लाम छोड़ दिया।) या फिर ग़ालिब के सह-भाषी होकर कह सकते हैं —

हम मव्वहिद हैं
हमारा केश है तर्के रसूम
मिल्लतें जब मिट गईं
अजज़ाए ईमाँ हो गईं।।

(हम एक-आराधक हैं, औपचारिकताओं का त्याग हमारा स्वभाव है, (हमारी दृष्टि में) फ़िरके मिट गये और ईमान में समा गये)

❑ वास्तविक समस्या धार्मिक और साम्प्रदायिक भेदभाव की लौह-शृँखलाओं को तोड़ने की है। गिरोह बन्दी का हठ आध्यात्मिक एवं चारित्रिक

तन है । ईश्वर के निकट विभिन्न भिन्न-भिन्न मानवीय गिरोह विभिन्न आध्यात्मिक तपों और परीक्षणों के साधन हैं, फूट और घृणा के नहीं। यदि वे ऐसे होते तो ईश्वर एक ही गिरोह उत्पन्न करता। सब मत कट्टरता के नहीं वरन् आध्यात्मिकता के ध्वजा-धर हैं। इसलिए 'अराज' कहते हैं—

"इस जगत् को ईश्वर से वासित कर लेना व्यक्ति और समाज दोनों के हित में है।"

— धार्मिक चिन्तन, पृ० ३४

❑ फिर कहते है —

"ईश्वर को संसार में बसने दो, (इस से ) संसार में भलाई ही बढ़ेगी। फिर भी ईश्वर के नाम पर कई बुराइयाँ फैलती देखी गई हैं।"

— धार्मिक चिन्तन, पृ० ३४

❑ 'अराज' मानव समाज के प्रबन्ध की नींव आध्यात्मिकता पर ही रख़ना चाहते हैं, किन्तु वे भली भाँति सावधान हैं कि ईश्वर के नाम का अनुचित एवं भ्रामक प्रचार करके समाजी भलाइयों को नष्ट भी किया जा सकता है, अशान्ति और बद-अमनी भी उत्पन्न की जा सकती है। इसलिए वे हर मत की शिक्षा से लाभ उठाने के इच्छुक हैं, ताकि परस्पर अज्ञानता और पूर्वग्रह को समाप्त किया जा सके। वे बहुत स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं —

"हमें हर उस महापुरुष की बात सुनने के लिए अपने कान और दिमाग खुला रखना चाहिए जो हमें सत्य बताना चाहता है, फिर वह हमारे सम्प्रदाय का है या नहीं है, यह सोचना उचित नहीं। हम अपने आपको किसी घेरे में बन्द करके पूर्ण सत्य को कैसे पायेंगे? पूरा सत्य तो बहुत विशाल है।"

— 'धार्मिक चिन्तन', पृ०१२

❑ 'अराज' सत्य की विशालता के प्रेमी हैं । वे सत्य को केवल धार्मिक पुस्तकों में नहीं ढूँढते अपितु प्रेमचन्द, गोर्की, शेक्सपियर, गेटे और सादी की रचनाओं में गोता लगाकर निहाल हो जाते हैं । वे अनुभव को सत्य समझते हैं। उनके अपने जीवन में खरे अनुभवों की भरमार है। इनके ही आधार पर कितनी शुचि और सीधी सलाह देते हैं —

"सभी सम्प्रदायों की पुस्तकें उपलब्ध हैं, उन्हें खरीदा जा सकता है और पढ़ा जा सकता है।"

— धार्मिक-चिन्तन, पृष्ठ-१०३

❑ अराज केवल चिन्तन तक ही सीमित नहीं हैं अपितु उन्होंने गाँधी के 'हिन्द-स्वराज' और मार्क्स और अहिंगलर के कम्युनिष्ट मैनीफ़ैस्टो की तरह अपने एक संक्षिप्त पैम्फ़्लेट में आध्यात्मिक समाजी संगठन की रूपरेखा भी खींची है। स्पष्टता के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु प्रस्तुत किये जाते हैं —

१. मानवों की समानता, सद्‌भावना, सेवा, स्वच्छता और संस्कार, इन पाँच अंगों से बना है मानव का शाश्वत धर्म ।

३. यह धर्म मानव के हित और प्रगति के लिए है। इससे मानवता की आयु लम्बी होगी।

४. हम सब परमात्मा की सन्तान हैं। मानव परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है।

❑ ये बिन्दु एक आध्यात्मिक समाज की नींव हैं और यही वह समाज है जो मानव को रहने और बसने के लिए एक शान्तिपूर्ण जीवन दे सकता है।

सम्पर्क :

बी-१/४१५, जनकपुरी, नई दिल्ली-५८

(भाष : ५५६१७४७, ५५४४२१६)

# १४. अराजकृत "श्रीराम जप"

—प्रो० सोमदत्त दीक्षित

❑ डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' द्वारा की गई रचना 'श्री राम जप' (नित्य पाठ के लिए १०८ दोहे) एक अनूठी कृति है। भक्ति-भाव से लोग श्री रामचरितमानस का पारायण करते हैं। विभिन्न काण्डों के पठन-पाठन से श्री राम जी के जीवन के पृथक् प्रसंगों में खो जाते हैं। पर भक्ति-भावना की संपृक्तता शिथिल पड़ जाती है। इस कृति के १०८ दोहे उस 'नाम जप' माला के वे मनके हैं जो मनके मनके फेर वाले छलिया मन के स्थायी बन्धन बन जाते हैं।

❑ श्री राम जी की महिमा तो सार्वभौमिक है। यदि बाल्मीकि कृत रामायण विश्व के प्रथम काव्य रूप में प्रस्फुटित हुई, तो उसकी लीला भी देश-विदेश में प्रसारित हुई। यदि इस्राइल के एक नगर का नाम 'राम अल्लाह' है तो 'श्री राम जप' का दोहा संख्या (५) हमें अनुस्मरण कराता है —

*ईश्वर अल्ला वाहिगुरु, राम एक के नाम।*<br>
*श्रद्धा से कोई जपे, हों पूरन सब काम।।*

तो दूसरी ओर बौद्ध थाईलैण्ड, मुस्लिम मलेशिया व इण्डोनेशिया में दुःखी मन को शान्ति दिलाने के लिए रामलीला अत्यन्त लोक प्रिय मनोरंजन है।

*दुखी सभी संसार में, सुखदाता है राम।*<br>
*रामशरण में ही मिला, पूर्ण सत्य विश्राम ।।*

— श्री राम जप, दोहा-१०४

❑ जो ईश्वर श्री राम के नामामृत को चटखारे लेकर पान करना चाहते हैं उनके लिए—

*गाइये श्रीराम जप, यदि नित निरन्तर प्रेम से।*<br>
*तो मिलेंगे मन-भवन में, रामजी नित नेम से।।*

सम्पर्क :<br>
कृष्णायन, ए-१३३, सेक्टर-२७,<br>
नोएडा (उ०प्र०), पिन-२०१३०१

अराजकृत 'सरल गीता' के सन्दर्भ में

# सरल गीता

❑ गीता के अनेक अनुवाद उपलब्ध हैं। उनमें 'सरल गीता' का विशेष स्थान है। यह गीता का पद्यानुवाद है। प्रत्येक श्लोक का बिना घटा-बढ़ी के हिन्दी श्लोक में अनुवाद किया गया है। इसके संस्कृत के श्लोक की भाँति ही पढ़ा जा सकता है। इसे सरलता से कंठस्थ किया जा सकता है। इसका अभ्यास करने के पश्चात् संस्कृत की 'श्रीमद्‌भगवद् गीता' को समझना सहज हो जाता है।

❑ गीता को समझने की इस सीढ़ी जैसे ग्रन्थ को प्रत्येक घर में होना चाहिए। सन् १९९८ का कम्प्यूटर द्वारा नयनाभिराम अक्षर-विन्यास से प्रकाशित विशेष संस्करण ६० रुपये में उपलब्ध है। डाकव्यय अतिरिक्त (रजिस्टर्ड डाक व्यय १२ रुपय) है।

❖

अराजकृत 'ईशावास्योपनिषद' के सन्दर्भ में

# ईशावास्योपनिषद् का अध्ययन

❑ 'वेदान्त' के गहन विषय को समझने के लिए ईशावास्योपनिषद् को समझना बहुत सहायक होता है। यजुर्वेद के एक भाग को ईशावास्योपनिषद् कहा जाता है। डॉ० अराज ने इस उपनिषद् के प्रत्येक मन्त्र का सन्धिच्छेद, अन्वय और प्रत्येक शब्द का अर्थ देकर इसे इतना सरल बना दिया है कि हिन्दी जानने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस गहन विषय को समझ सकता है। प्रत्येक मन्त्र के भागों पर सरल भाषा में एवं दैनिक जीवन के उदाहरण देकर विद्वान् लेखक ने जो विमर्श प्रस्तुत किया है, वह हृदय में उतर जाता है। कम्प्यूटर के सुन्दर एवं मोटे अक्षरों वाले स्पष्ट अक्षर विन्यास वाला ग्रन्थ केवल (६०) रुपये (और रजिस्टर्ड डाक व्यय १२ रुपये) में उपलब्ध है।

सम्पर्क :

श्रीमती राधा भाटिया, कृते-एकता प्रकाशन
बी-२-बी-३४, जनकपुरी, नई दिल्ली-११००५८

❖

# अराज - एक परिचय

| | | |
|---|---|---|
| पूरा नाम | : | डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज' |
| जन्म | : | ३-६-१६३३ ईस्वी, ग्राम देववाल, जिला सरगोधा (सम्प्रति पाकिस्तान मेँ) |
| माता-पिता | : | श्रीमती बुद्धिमती (बुधवन्ती), श्री हवेली शाह |
| कुल | : | चन्द्रवंशीय क्षत्रिय (राजपूत) भाटिया (नख-चबाक), गोत्र-पाराशर |
| क्रमशः पूर्वज | : | ओम्प्रकाश, हवेली शाह, नारायण शाह, जूणेशाह, हुक्मेशाह इत्यादि। |
| उपनाम | : | 'ओम्' (बचपन मेँ), 'प्रकाश' (५८ ई० तक), 'अचल राजपूत' (७० तक), 'अराज' (सन् ७० से) |
| शिक्षा | : | एम०ए० (हिन्दी, पं.वि.वि., प्रथम श्रेणी, वि.वि. मेँ द्वितीय स्थान), पी-एच०डी० (दिल्ली वि०वि०; 'नागरी लिपि का उद्भव और विकास' विषय पर अन्यतम शोध); वैद्य-विशारद, आयुर्वेद-रत्न (हिन्दी वि.वि. प्रयाग) |
| भाषाएँ | : | पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू। अन्य कई भाषाओँ और लिपियोँ का थोड़ा बहुत ज्ञान। |
| व्यवसाय | : | शिक्षण, नर्सरी से एम०ए० तक के छात्रोँ को पढ़ाया और सर्वत्र सफल अध्यापक रहा। मुख्याध्यापक, उपप्रधानाचार्य और प्रधानाचार्य के राजपत्रित पदोँ पर कार्य किया। सर्वत्र आदर पाया। साठ वर्ष की अवस्था तक सेवा कर आदरपूर्वक १६६३ ई० मेँ सेवा निवृत्त हुआ। अब पेंशन पर जीवन-यापन। |
| साहित्य-सेवा | : | प्रमुख विधा कविता। लिपि और भाषा पर शोध। धर्म, समाज आदि का गम्भीर चिन्तन। लघुकथा, कहानी, उपन्यास, पत्र, डायरी, रपट, समीक्षा, बाल-साहित्य इत्यादि पर लेखन। पचासेक पुस्तकेँ प्रकाशित। अनेक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओँ मेँ तथा पांडुलिपि के रूप मेँ। |
| स्वभाव | : | मौन साधक, धार्मिक, देशभक्त, हिन्दी भक्त। |
| परिवार | : | पत्नी 'राधा भाटिया'। दो पुत्र-राजीव रत्न और राकेश। दोनोँ अपने-अपने परिवार सहित पितृ परिवार के साथ रहते हैँ। |
| सम्पर्क-सूत्र | : | बी-२-बी-३४, जनकपुरी, नई दिल्ली-११००५८ |

# अराजकृत साहित्य

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १/प्र*/१९६३/ | पां/हँसते रोते आँसू | / कविताएँ | / | १५) |
| २/प्र*/१९६४/ | पां/अशांत चिता | / उपन्यास | / | ५०) |
| ३/प्र*/१९६६/ | पां/बढ़ते चरण | / उपन्यास | / | ५०) |
| ४/प्र*/१९६८/ | पां/क्षितिज की खोज | / कविताएँ | / | ५०) |
| ५/प्र*/१९७१/ | भारतीय समान लिपि अरा | / गद्य | / | १००) |
| ६/प्र*/१९७४/ | लिपि विज्ञान और नागरी लिपि | / शोध / | | |
| | मूल पुस्तक का फोटो स्टेट | | | १००) |
| ७/प्र*/१९७४/ | अनाम युग | / कविताएँ | / | १०) |
| ८/प्र*/१९७७/ | अरा के गुण | / शोध | / | २) |
| ९/प्र*/१९७८/ | नागरी लिपि का उद्भव और विकास/शोध प्रबन्ध/ | | | |
| | केवल विशेष रूप से पठनार्थ | | | |
| १०/प्र*/१९७९/ | नागरी लिपिः समस्याएँ और समाधान*/फो० / | | | १००) |
| ११/प्र*/१९८०/ | ईश्वर में विश्वास / पां | / धर्म चिन्तन | / | ४) |
| १२/प्र /१९८०-९३/ | मानव समाज (पुस्तिका) | / दस्तावेज | / | १) |
| १३/प्र /१९८१/ | सत्यज (खण्ड काव्य) | / कविता | / | १०) |
| १४/प्र*/१९८२/ | बन्धन की प्यास | / उपन्यास | / | * |
| १५/प्र /१९८२/ | राज्य दान | / उपन्यास | / | * |
| १६/प्र*/१९८३/ | भारोमी / पां | / लिपि शोध | / | २०) |
| १७/प्र /१९८४/ | भाषा, लिपि और भारत | / निबन्ध | / | २०) |
| १८/प्र /८४-९७/ | रामादर्श | / काव्य | / | ५०) |
| १९/प्र /१९८६/ | दो-बटे-तीन इन्सान | / कविताएँ | / | ३०) |
| २०/प्र /१९८७/ | एन् अबिप्रायम् | / कविताएँ | / | ३०) |

२१/प्र /१६८७/ श्री राम कथा मणि / पद्य/धर्म / ३)
२२/प्र /१६६०/ श्री राम रस / पद्य/धर्म / ३)
२३/प्र /१६६०/ श्री राम चिन्तामणि / पद्य/धर्म / ३)
२४/पां /१६६१/ तरंगों के ताल / कविताएँ / ३०)
२५/प्र /१६६२-६७/ अराज दोहावली / दोहे / ५०)
२६/पां /१६६२/ कृति पत्रिका (१) / विविध / ३०)
२७/प्र /१६६३-६८/ श्री राम जप (मूल) / दोहे/धर्म / २)
२८/प्र /१६६३/ श्री राम प्रेम रत्नावली / दोहे/धर्म / १)
२६/प्र /१६६३/ श्री राम भक्ति दोहावली / दोहे/धर्म / १)
३०/पां /१६६३/ छोटी गीता (पंजाबी) / पद्य/धर्म / ४)
३१/प्र /१६६३/ श्री राम भक्ति सीढ़ी / दोहे/धर्म / १)
३२/पां /१६६३/ लूणा पाणी ते होर २० (पंजाबी) / ५)
३३/प्र /१६६३/ श्री राम कथा (महाकाव्य) / ६०)
३४/पां /१६६३/ कुछ कहानियाँ / ६०)
३५/पां /१६६३/ ईशावास्योपनिषद् का अध्ययन ६०)
३६/पां /१६६३/ साहित्यिक निबन्ध (१) / ६०)
३७/पां /१६६३-६८/ धार्मिक चिन्तन / ६०)
३८/पां /१६६३/ डायरी के पन्ने / ५०)
३६/पां /१६६३/ कृति पत्रिका (२) / विविध / ३०)
४०/पां /१६६३/ बाल गीत (३३ छोटे गीत) / / २)
४१/पां /१६६४/ चम्पा के फूल (१) / डि० / ५०)
४२/पां /१६६४/ सरल गीता (गीता का पद्या०) / डि० / ६०)
४३/प्र */१६६५/ श्री राम भजनामृत / भजन / १०)
४४/प्र /१६६५/ डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया की साहित्य-साधना
(संपादक : अराज) १८०)

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४५/पां /१६६६/ | दीप-वीथी / सूफ़ी साधना पर आधारित ६४ छन्द / फोटो स्टेट | | १०) |
| ४६/पां /१६६६/ | श्री राम भक्तिसुधा (११ पुस्तकें) | / डि० | / १००) |
| ४७/प्र */१६६७/ | श्री रामजप (अर्थ सहित) | / डि० | / १०) |

(इत्यादि)

## प्रयुक्त संकेत

प्र - प्रकाशित पुस्तक

पां - पाण्डुलिपि या पुस्तक का फोटो स्टेट

* - दुर्लभ

फोटो स्टेट के मूल्य अनुमानतः दिये गये हैँ, बाजार भाव से घट बढ़ सकते हैँ।

सम्पर्क :

एकता प्रकाशन, बी-२-बी-३४, जनकपुरी,

नई दिल्ली-११००५८

# अराज सम्बन्धी पुस्तकेँ

| | | | |
|---|---|---|---|
| १/प्र* /१६६०/ | साहित्य साधक अराज (सम्पादक डॉ० सुन्दर लाल कथूरिया) | / रायल / | ८)* |
| २/प्र /१६६५/ | चेतना के पंख : डॉ० अराज का व्यक्तित्व और कृतित्व (भावना प्रकाशन दिल्ली) (सम्पादक-डॉ० अशोक भाटिया) | / डि० / | ११५) |
| ३/प्र /१६६८/ | दृश्य-दृष्टि-दर्शन : अराजकृत कुछ पुस्तकोँ पर चिन्तन (संकलन - डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज') | / डि० / | ५०) |

अन्य पठनीय पुस्तक

# श्री राम कथा

ग्यारह खण्ड का महाकाव्य

कवि

डॉ० ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज'
पी-एच०डी०

संस्करण-२, सन् १९९८ ई०,